ओ३म्

# जन ज्ञान

माघ २०३५ [मासिक] जनवरी १९७९

दयानन्द संस्थान द्वारा आयोजित विमोचन समारोह में श्री केदारनाथ साहनी मुख्य कार्यकारी पार्षद दिल्ली, श्री प्रशान्त वेदालंकार व स्वामी ओमानन्द सरस्वती

दयानन्द संस्थान की अध्यक्षा पंडिता राकेश रानी सभी को धन्यवाद देते हुए।
बैठे हुए हैं—श्री साहनी, श्री प्रशान्त वेदालंकार, स्वामी ओमानन्द सरस्वती, श्री स्वामी
जगदीश्वरानन्द सरस्वती व पं० भारतेन्द्र नाथ।

प्रसिद्ध पत्रकार श्री बालेश्वर अग्रवाल प्रबन्धक संचालक 'हिन्दुस्तान समाचार'
श्री साहनी का स्वागत करते हुए।

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का प्रकाशन

# जन—ज्ञान

[मासिक]

○

सम्पादक

**भारतेन्द्रनाथ**

दूरभाष : ५६६६३६
८०१२२१

○ ○ ○

पता

१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग
[निकट ३१-नाईवाला]
करोल बाग, नई दिल्ली-५

**वार्षिक शुल्क २०)**

○

विदेश में ६ पौंड
(विमान से)

○ ○ ○

४ पौंड : समुद्री डाक से

○ ○ ○

आजीवन—३०१ रु.

**एक प्रति : २ रुपये**

**वर्ष १२ : अंक ६**

जनवरी

सम्वत् २०३५


# ईश्वर की बात

ईश्वर लिखता है, ईश्वर बोलता है,
ईश्वर बहुत कुछ कहता है···
कहां, कैसे, कब ?
किस ने पढ़ा है उस का लेख,
किस ने सुनी है उसकी वाणी,
कहीं तुम पागल तो नहीं हो गए,
जो अनबूझ पहेली सी
यह असंभव बात कह रहे हो ?
जब वह निराकार है
जब वह लिखेगा, बोलेगा कैसे···
जिसका कोई रूप ही नहीं है वह कुछ कहेगा कैसे···
अरे, आंखें खोलकर देखो तो सही,
यह चारों ओर गूंजते कलगीत, नदी-पहाड़, झरने,
पशु-पक्षी—और मनुष्य
क्या प्रभु की बातें नहीं सुना रहे ?
किसी नदी के किनारे बैठकर
समुद्र की तरंगों को गिनते हुए, जंगलों में घूमते हुए
क्या तुम्हें कुछ सुनायी नहीं पड़ता।
एकान्त में बैठकर,
दुःख-सुख में डूबे, मनुष्यों को देखकर,
क्या तुम्हें प्रभु की बात दिखायी नहीं पड़ती।
मेरा मन—तुम्हारा मन, सब का मन,
क्या एक ही दिशा में, एक ही बात में, उलझा
या सुलझा सा नहीं है।
चांद-सूरज-सितारे, या टिमटिमाते तारे···
गिरती हुयी ओस की फुहारें,
गरजती बादलों की झंकारें···
क्या प्रभु की कहानी नहीं सुनातीं ?
प्राणों की धड़कन के स्वर,
धरती से विदा का गीत,
बालक के जन्म का संगीत,
यह सब क्या है ? कभी सोचा है।
उस ने जो लिखना था, लिख दिया।
उसे—पढ़ो और समझो
जानो उस को, मिलो उससे, तो देखो—
तुम्हें प्रकाश आनन्द मिलेगा, और तुम
धरती पर रहते हुए
आकाश में उड़ता अपने को अनुभव करोगे,
क्योंकि तब तुम प्रभु की वाणी
पढ़-लिख—सुन सकोगे—

—भारतेन्द्र

# १९७९ में आर्यसमाजों का कार्यक्रम

## उत्साह पूर्वक कार्य करने का व्रत ल

१. वैदिक अध्यात्मवाद का प्रचार किया जाए। महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट प्रभु मिलन के मार्ग को सब विधि जनता को बताया जाए।

२. जन्म गत जातिवाद के विरुद्ध आन्दोलन चलाएं और गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का प्रचार करें।

३. गो रक्षा आन्दोलन को पूरा समर्थन दिया जाए।

४. वार्षिकोत्सवों पर वैदिक सिद्धान्तों पर व्याख्यान कराए जाएं और उपदेशकों को व्याख्यान के विषय पहले से ही बता दिए जाएं ताकि वे तैयारी कर बोलें।

५. पाखंडों अन्धविश्वासों के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन चलाया जाए।

६. जनता तक—ग्रामों में आर्यसमाज का उद्देश्य और सन्देश सही रूप में फैलाएं।

७. सत्य सनातन वैदिक धर्म की स्थापना का प्रयत्न किया जाए।

८. साहित्य प्रचार पर विशेष बल दिया जाए।

९. केन्द्रीय स्तर पर उपदेशक महाविद्यालय स्थापित किए जाएं।

१०. प्रान्तीय भाषाओं में प्रचार की व्यवस्था करें।

यह दस सूत्री कार्यक्रम सभी पूरे बल से प्रसारित करें।

—विनीत—

**जगदीश्वरानन्द सरस्वती**
प्रधान

**भारतेन्द्र नाथ**
प्रधान मंत्री

अखिल भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा १५९७ हरध्यान सिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

---

# १९७९ की डायरी मुफ्त उपहार में

जन-ज्ञान के सभी सदस्यों को [जिनका शुल्क कभी भी समाप्त हो रहा हो] जो अपना वार्षिक शुल्क एक वर्ष का २०) ३१ जनवरी १९७९ तक हमें M.O. से भेज देंगे—हम ५) मूल्य की डायरी केवल **डाक व्यय की V.P. से भेज देंगे**। और एक वर्ष आगे का शुल्क जमा कर लेंगे।

मनीआर्डर कूपन पर अपनी सदस्य संख्या अवश्य लिखें। ३१ जनवरी के बाद उपहार नहीं दिया जाएगा। जो नए सदस्य बनेंगे उन्हें भी डायरी उपहार में मिलेगी। वे अपने कूपन पर पूरा पता व सदस्य संख्या अवश्य लिखें। धन इस पते पर भेजें।

**सम्पादक जन-ज्ञान (मासिक)**

वेद मंदिर—शहीद लेखराम नगर, दिल्ली-३६

**नोट**—जो V.P. से डायरी न मंगाना चाहें वे २०)५० पैसे भेजें। उन्हें सादी डाक से डायरी भेज देंगे। पर खोने का दायित्व हमारा न होगा।

## अंक में पढ़िए


| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | ईश्वर··· (कविता) | | १ |
| २. | उपदेश मां का | | ५ |
| ३. | मैं हृदय मंदिर से लिख रहा हूं | | ८ |
| ४. | भगवान् मर गया (कविता) | | |
| ५. | वैदिक ईश्वरवाद—स्व० पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड का खोजपूर्ण लेख | | १७ |
| ६. | गायत्री मंत्र का ऐतिहासिक अध्ययन | —कृष्णलाल एम० ए० | ३१ |
| ७. | वेद महिमा | —संगृहीत | ३८ |
| ८. | दयालु हंस घमंडी कौआ (बाल कथा) | —जगदीश प्रसाद पाठक | ४१ |
| ९. | पाणिग्रहण प्रतिज्ञा | —पं० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी | ४३ |
| १०. | तुम नहीं सुधर सके (कविता) | —निर्भय | ४६ |
| ११. | ईश भक्ति बनाम वस्तुस्थिति | —ब्रजमोहन | ४७ |
| १२. | कौड़ी मोल बेच मत (कविता) | —परमात्मा शुक्ल | ४८ |
| १३. | प्रतिकार (कहानी) | —गौतम | ४९ |
| १४. | दान सूचि | | ५५ |
| १५. | दयानन्द दर्शन—पुस्तक परिचय | | ६१ |
| १६. | बाल कथा | —वीरेन्द्र | ६३ |
| १७. | राष्ट्रभाषा समस्या | —डा० सुरेन्द्र | ६५ |
| १८. | गुरु दक्षिणा (कहानी) | —राधेश्याम | ६९ |
| १९. | उपयोगी सुझाव | —कमल | ७२ |
| २०. | जातिवाद : समस्या | —लक्ष्मीदत्त दीक्षित | ७३ |
| २१. | जातिवाद और अंधविश्वास समाप्त किए जाएं | —केदारनाथ साहनी | ७७ |
| २२. | आप ही के पत्र : समाचार आदि | | ७८ |



# सरस्वतीन्द्र जीवन चरित्र

## भारी संख्या में मंगाएं

महर्षि दयानन्द का यह जीवन चरित्र सर्वप्रथम १८९७ में छपा था। यह अत्यन्त प्रामाणिक व विविध नए प्रकरणों से युक्त ४०० पृष्ठों में था।

मूल्य १०) है किन्तु शिवरात्रि तक—सजिल्द

७०) की १० प्रतियां

१५०) की २५ प्रतियां

२५०) की ५० प्रतियां देंगे।

अजिल्द ४००) सैकड़ा दी जाएंगी।

अपना आदेश आज ही भेज दें

**दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर, दिल्ली-३६**

# भगवान् मर गया

□ □□

लगता है भगवान् मर गया...
सपनों का सामान सज गया,
रूठ चुके अरमान विजय के,
नाच रहा शैतान यहां पर,
कैसे गाऊं गीत सुनहले,
जब जीवित इन्सान मर गया !

□

पापों की फैली चादर है,
चन्दा की किरणें काली हैं।
गंगा का जल मैला-मैला,
सूरज की लाली ठंडी है,
बदल गया धरती पर सब कुछ
पुण्य पाप का नाम बन गया।

□

तड़प रहा है सत्य सुधा रस,
उछल रहा है गरल गले में,
जिसको पीकर भाव बदल कर
मन्दिर भी शमशान बना है,
अलख चांदनी रोती देखी,
आंखों का वरदान ढल गया !

□

किस के आगे बीन बजाऊं,
कौन सुनेगा मन की बातें,
किसे समझ है आज धर्म की,
कौन जानता जीवन क्या है—
डगर-डगर में धोखा देखा,
चलने का अरमान मर गया ॥
लगता है भगवान् मर गया !

—भारतेन्द्र नाथ

# उपदेश : माँ का...

देख-देख कर तेरी छवि को मेरा मन भरमाया!
ढूंढा तुझ को नगर-डगर में, पार न तेरा पाया!
तू है कैसा, नहीं ज्ञान यह, फिर भी तुझ से प्यार है।
तेरे गीत सभी गाते हैं, महिमा अपरम्पार है।

भाइयो और बहनो!

वह प्रभु जिस के गीत धरती गाती है, जिस का नाम लेते भक्त जन थकते नहीं, वह प्रभु, जिसे कोई ईश्वर, कोई गाड, कोई अल्लाह, कोई कुछ और कोई कुछ कहता है, हम सभी के लिए अनजान है। उसे जानने के लिए, उसे पाने के लिए भक्तों ने बड़े प्रयत्न किए, पर वह मिलता नहीं, कैसा है वह—

जिस का रूप नहीं, न है रंग किसी ने जाना
जिस के पास पहुंचना मुश्किल, जिस का नहीं ठिकाना
जिस की छवि छायी शब्दों में, दर्शन दुर्लभ जिस के
रूप-अरूप—स्वरूप ठिकाना किसने है पहचाना!

उस से मिलने की बात सभी करते हैं, पर मार्ग कोई नहीं जानता। जो जानते हैं वे भी तो भटकते हैं क्योंकि उनका ज्ञान असत्य पर आधारित है। इसलिए प्रयत्न असफल हो जाते हैं।

किसी भक्त ने कहा कि ईश्वर से क्या मिलना?

**जब गरदन झुकायी, देख लिया**

पर यह गरदन झुकाना, क्या सरल बात है। हम सभी तो अपने-अपने विचारों में व्यस्त हैं। अपने-अपने कर्म जाल में मस्त हैं। दु:खों में डूबते हैं तो वह याद आता है। मुसीबत आती है तो उसका नाम लेते हैं पर क्या यही उसका काम है···

वह क्या है···कैसा है···कहां रहता है, इसका वर्णन महान् संत स्वामी दयानन्द ने स्वानुभूति से किया था···उन्होंने बताया—

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान
न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि
अनुपम सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी
अजर, अमर, अनादि, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है।

ईश्वर सत्य है, वह ज्ञान का भंडार हैं आनन्द का स्रोत है। उस का आकार नहीं, वह तो अणु-अणु में व्याप्त है। ब्रह्मांड का कोई स्थान नहीं जहां वह न हो।

वह सर्व शक्तिमान है। अर्थात् अपने नियमों को चलाने के लिए उसे किसी का भी सहारा लेने की आवश्यकता नहीं। सभी प्रकार की शक्तियों का केन्द्र-प्रेरक और दाता वह ही है।

वह न्यायकारी है। न वह खुशामद से प्रसन्न होता है न निन्दा से रुष्ट। वह तो सभी को समान रूप से अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही फल देता है। उसकी न्याय-अवस्था में कहीं भी कोई दोष हो ही नहीं सकता। जो भक्त जन यह समझते हैं कि वह नाम लेने से प्रसन्न होकर हमें औरों से अधिक कुछ दे देगा, वे भ्रम में हैं। आप जो भी बुरा काम करेंगे उस का दंड तो मिलेगा ही। वह क्षमा नहीं करता। अच्छे कर्मों का अच्छा फल भी मिलेगा पर उससे बुरे कर्मों का दंड छूट नहीं सकता।

वह दयालु है। सभी को जीवन की उन्नति के लिए साधन जुटाता है। गर्भ में भी बच्चे को पालता है। उसने हमें शांति और आनन्द प्राप्त करने के लिए बुद्धि दी है। लाखों रु० से भी मूल्यवान इन्द्रियां दी हैं। उसकी दया सभी पर समान है। पक्षपात से शून्य जैसे पिता सभी पुत्रों को पालता है वैसे ही प्रभु भी सभी जीवधारियों का पालन-पोषण करता है।

वह अजन्मा है। न जन्म लेता है न मरता है। जिसका जन्म होगा, उस की मृत्यु भी होगी। किन्तु वह तो सदा से है, सदा रहेगा। देह-रूप आकार से परे वह प्रभु अजन्मा है। अर्थात् कभी न उसका ह्रास होता है न वृद्धि।

वह अनन्त है। वह सर्वव्यापक है···सर्वत्र विद्यमान है। अतः वह असीम और अनन्त है। न पाया किसी ने उसका वार पारा। सच ही तो है—

सीमाओं के बन्धन से दूर
ज्योतिर्मय प्रकाश का पुञ्ज
प्राणों के कण-कण में छाया,
चिर अनन्त वह···
जिस की महिमा देख चकितसा,
विश्व खड़ा है यह सस्मित सा···

निर्विकार है···उस में कोई विकार हो ही कैसे सकता है क्योंकि वह काल, मृत्यु-जरा जन्म सब से दूर है। सदा एक-सा रहने वाला है ईश्वर···

वह अनादि है, वह अनुपम है,
उस जैसा कोई ना और।
सब का है आधार वही तो
सबसे ऊंचा और महान्
सर्वेश्वर है···

कण-कण में है व्याप्त
ढूंढना उस को क्या मुश्किल है ।
सब के अन्तर में बैठा है ।
सब के मानस में पैठा है ।
सब कुछ जान रहा है वह तो,
उस से क्या छिपता है समझो,
पाप-ताप से बच जाओगे ।
स्वर्ग यहीं पर पा जाओगे !

भक्त जन ! अजर, अमर-नित्य पवित्र और इस सृष्टि के निर्माता त्राता प्रभु को जानो, यही जीवन की सफलता का मार्ग है । यह मनुष्य देह हमें अपने शुभ कर्मों के बदले इसलिए मिली कि हम इस के द्वारा धरती के सब से महान् उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति का सुफल प्राप्त कर सकें ।

जीवन का प्रत्येक चरण तभी सफल है जब हम उसके पास हैं । उस से दूर रहकर अन्धकार ही अन्धकार मिलता है । इसलिए आज की आवश्यकता है, प्रभु से मिलना । वह मिल जाए तो समझो कि सभी कुछ मिल गया ।

आप अपने अन्तर को टटोलें और देखें कि भौतिक दृष्टि से सब कुछ हमारे पास होते हुए भी हमें कोई अभाव तो अनुभव नहीं करते···यदि हां तो आपका यह अभाव तीन लोक का राज्य भी पूर्ण नहीं कर सकेगा । इस की पूर्ति तो उससे मिलने से ही होगी ।

उस से मिलो ! उसे जानो उस के समीप बैठो···क्या लाभ होगा, इसकी चरचा अगली बार करेंगे । बस आज तो यही सोच लो,

उस से मिलना लक्ष्य हमारा,
वही एक प्रियतम है अपना ।
अन्तर पावन कर पाएंगे,
उस प्रभु का दर्शन अन्तर में—आशीर्वाद —राकेशरानी

---

# एक प्रबन्धक चाहिए

वेद मन्दिर के लिए एक विद्वान् अनुभवी प्रबन्धक की आवश्यकता है । भाषण-लेखन-प्रबन्ध में निपुण हो । गुरुकुलों में व्यवस्था का अनुभव रखने वालों को वरीयता ।

निवास की व्यवस्था वेद मंदिर में होगी । पानी बिजली व बीमारी में सेवा की व्यवस्था होगी । न्यूनतम अनिवार्य आवश्यकताओं के साथ अपने हस्तलेख में आवेदन करें । ४० वर्ष से कम आयु के व्यक्ति कष्ट न करें ।

अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान, वेद मंदिर, दिल्ली-३६

# मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ~

जिन्दगी के गीत गा रहा हूं मैं,
प्यार से तुम्हें बुला रहा हूं मैं
तुम चले आओ तो सूरज नया उगे
धरती नयी बने, शबनम नया बने

कभी तूफान से टकराने में मजा आता था, अब घबराकर छिप जाने की आदत बन गयी है। कभी फूलों से खिलने की शिक्षा ली थी, अब उन्हें कुचलना स्वभाव बन गया है। कभी शहादत का जाम पीने के लिए खून खोलता था, अब आपस में लड़ने में उसे बहाते हैं।

लगता है सब कुछ बदल गया है पर फिर भी हम नहीं बदले, यही कारण है कि जमाने ने हमारे साथ चलना स्वीकार नहीं किया। धन-दौलत की धरती पर आदर्शों की खेती का सपना पूरा होने की आशा भी कैसे की जा सकती थी?

लेकिन हम कर रहे हैं। आज भी हम प्रतीक्षा कर रहे है उन जवानों की जो मालाओं के लिए नहीं, मौत के फन्दे के लिए अपना सिर तैयार कर सकें। जिन की मस्ती मिटने में हो, जिन का शौक जलना हो, जो तूफान से टकरा सकें, हिमालय झुका सकें। सागर को सुखाने की तमन्ना जिनके मन में मचल सके। सार यह कि असंभव को संभव बनाने के लिए जो संघर्ष कर सकें।

आप हमें पागल कह सकते हैं पर भूलिए नहीं—हमारा यह पागलपन हमारी सब से मूल्यवान निधि है। हम ने सपना देखा है उन सभी दीवारों को गिराने का, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच खड़ी हैं। हमने संकल्प लिया है धरती के हर धर्म स्थान को पवित्र करने का। मनुष्य पूजा छुड़ा कर ईश्वर की पूजा कराने का।

आप की दृष्टि में यह सब पागलपन हो सकता है पर हमारे लिए यह गंगा सा पवित्र सपना है। हम मत-वाद-हिंसा घृणा-द्वेष-जाति-देश के झगड़ों का नाम तक मिटा देना चाहते हैं।

आप नहीं देख पाते पर हम देख रहे हैं धरती पर चलती-फिरती ४०० करोड़ लाशों को—जी हां मनुष्य मर चुका है। उस की देह चल रही है पर उस में जीवन कहां है? जो है वह नहीं है, जो नहीं हैं वह है···यही तो एक सड़ा हुआ अज्ञान लपेट नकली-खोखली जिन्दगी आज सभी जी रहे हैं।

हम इस नकल को, मनुष्य की बरबादी को कैसे सहलें? कैसे देखें मनुष्य को पशु बन कर धरती पर रहते···उत्तर दो मनुष्य मर गया—तो क्या बचेगा? मरते मनुष्य को बचाने के लिए ही तो हम तड़प रहे हैं।

अपने लिए तो हमें कुछ भी नहीं चाहिए···न राज्य, न धन, न अधिकार। हम तो उस अमृत के लिए संघर्ष कर रहे हैं जो मनुष्य को जीवित कर सके, उसकी आंखें खोल सके···

मनुष्य की एकता, उसकी दिव्य दृष्टि, उसके अन्तर में जागृत ज्ञान उसे देव बना देगा, उस का उत्कर्ष धरती का उत्कर्ष होगा, उसकी जागृति स्वर्ग के संगीत की विभावरी···विहान को जन्म देगा, यह हमारा अटल विश्वास है।

मेरे प्राण! समय की लहर में न बहो, समय के स्वरूप को नया रूप देने के लिए अपना जीवन अर्पित करो। तुम्हारा आत्मा प्रभु मिलन से जब ज्योतिर्मान होगा, जब तुम अपने दर्शन कर शक्ति संपन्न बन जाओगे, तब तुम मेरी भाषा-भाव—समझ मेरा आमंत्रण स्वीकार करने में समर्थ होगे।

बुला रहा हूं दूर पार के प्रभु पुत्रों को,
उठा रहा हूं, सोए सपने जगती के,
नया विश्वास लेकर मैं बुलाता हूं
तुम्हें प्रियतम !
नयी भाषा—नयी आशा
नया संगीत छेड़ो रे !

आपका मन अंधकार को दूर भगाए। अज्ञान-असत्य-स्वार्थ और सभी कुछ जो वह छिपाना चाहता है नष्ट करे—वह पवित्र हो, वह संगीत-साम का सुने। प्रभु के दीप्त संदेश को मंदिर में मन के प्रतिष्ठित करोगे तो मेरी बात सुन पाओगे।

आप नील गगन के नीचे खड़े होकर रात्रि में मेरी बात पर विचार करें। सूरज की उगती पहली किरणों के गीत से मेरे शब्दों का अर्थ पूछें फिर देखें क्या होता है परिवर्तन···परिवर्तन के लिए प्राण दो—प्राण को अमोघ शक्ति से सज्जित करो। विश्व विजय के लिए प्रयाण करो···कर सकोगे क्या ?

## वेद मन्दिर : वेद मन्दिर

हमारा जीवन है वेद मन्दिर—वेद मन्दिर प्रतीक है प्रकाश का, उस लक्ष्य का, जिस के लिए प्रभु ने हमें बनाया था। देव दयानन्द के जीवन साध का उत्तराधिकारी है वेद मन्दिर! साधन नहीं पर साधना है। इसी साधना के बल पर वेद को विश्व धर्म बनाने के लिए सूरज बनकर चमकेगा वेद मन्दिर!

जंगल में, यमुना के किनारे हम बैठ गए हैं, प्रभु के भरोसे। हम मरेंगे भी यहीं और जिएंगे भी यहीं। किन्तु जो संकल्प लिया है वेद फैलाने का वह पूरा करेंगे।

Vedic Research institute—वेद विद्यापीठ की स्थापना, वैदिक उच्च महाविद्यालय, वैदिक साहित्य प्रकाशन और एक महान् उपदेशक विद्यालय···कब बनेगा इसका उत्तर वेद भक्त जनता देगी, हम तो इतना ही कर सकते है कि आप हमारी जितनी चाहे परीक्षा ले लें, हम अपने पथ से विचलित नहीं होंगे।

अभी तो केवल स्थान है, साधन आपने जुटाने हैं सभी वेद भक्तों को जागृत करना है, सभी तक वेद मन्दिर की बात पहुंचानी है।

आप काम करें, संसार झुकेगा, त्याग-तप-बलिदान और ज्ञान के अस्त्र से धरती की विजय का व्रत वेद मन्दिर का संकल्प है।

## आप क्या सोच रहे हैं ?

### शताब्दी : सत्यार्थ प्रकाश की

सत्यार्थ प्रकाश की शताब्दी मनायी जाएगी, पर क्या वैसे ही जैसे आर्यसमाज की हुयी ? क्या नारे-जलूस-प्रदर्शन ही शताब्दी है ?

सत्यार्थप्रकाश युगान्तरकारी है पर क्या उस पर प्रभावी ग्रन्थ लिखे गए ? क्या देश के बुद्धि जीवी वर्ग को, नेतृत्व को हम सत्यार्थ प्रकाश से प्रभावित कर पाए ? इस्लाम की ललकार, ईसाइयत के षड़यन्त्र, पाखंडियों के गर्व को क्या हम उत्तर दे सके···इन प्रश्नों पर आज आत्मचिन्तन की आवश्यकता है।

सत्य के उपासक सर्वोच्च संगठन के नेता ही यदि झूठ व्यवहार में ले आएं तो क्या सत्य का अर्थ ज्योतित हो सकेगा ? यदि हमारी कथनी और करनी में ही अन्तर हो जाए तो फिर काम कैसे होगा ?

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी यदि सफल करनी है तो आर्यसमाज के उच्च विचारकों विद्वानों का एक सम्मेलन बुलाया जाए और उसमें सोचा जाए कि सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी कैसे मनानी चाहिए।

वैसे स्वयं भू नेता स्वतंत्र हैं···उन्हें समझाना प्रभु के बस में भी नहीं···काश कि वे समझ पाते ?

### १९७९ : क्रांति का आवाहन

विदेशी पादरी बढ़ रहे हैं। ईसाइयत के नाम पर देश द्रोह का चक्कर, सेवा के नाम पर अराष्ट्रीयता का प्रचार चल रहा है। हम इस कुचक्र को समाप्त करने का व्रत लें।

इस्लाम राजनीति में फिर सिर उठा रहा है। पाकिस्तान का ज्वर आरम्भ हो चुका है। मजहब के नाम पर, अल्पसंख्यकों के दाम भुनाने का प्रयत्न है। भारतीयता को पीछे छोड़ साम्प्रदायिकता का विषधर फुंकार फिर मार रहा है।

नकली भगवान् छाते जा रहे हैं। पाखण्डों ने नाना रूप धारण कर लिया है। धर्म के नाम पर व्यभिचार का प्रसार किया जा रहा है। और वह सभी कुछ फिर जन्म ले चुका है जो १८७५ में सुला दिया गया था। और हम सुधार के ठेकेदार गद्दियों की भूख में व्यापारी बन चुके हैं। आपस में लड़ना, परस्पर कीचड़ उछालना और संगठनों पर अधिकार जमाना हमारा चरम लक्ष्य है।

गौएं आज भी कट रही हैं। शराब आज की गंगा बन गयी है। विलासिता, फैशन और नास्तिकता की आंधी हमें समूल नष्ट करने का संकल्प ले चुकी है।

ऐसे में हम यदि इन सभी को मिटाने का व्रत लें तो यह हिमालय से टकराने की बात है। पर हम टकराएंगे—लड़ेंगे और जीतेंगे।

दयानन्द के सैनिको ! कायर-स्वार्थी न बनो। लेखराम-श्रद्धानन्द बन अपना खून देकर देव दयानन्द का सपना पूरा करो। तभी जीवन है···। —**भारतेन्द्र नाथ**

# आर्य समाजें अब क्या करें?

—लक्ष्मीदत्त दीक्षित—

□ □ □

आर्य समाजों, आर्य प्रतिनिधि सभाओं और आर्य समाजी पत्र-पत्रिकाओं की संख्या बढ़ती जा रही है। आये दिन मनाई जाने वाली शताब्दियों के नाम पर होने वाले बड़े-बड़े जलसों और जलूसों की भीड़ देखकर लगता है जैसे सारा देश आर्य समाजी बन गया है। समय-समय पर आयोजित रेल यात्राओं को देखकर लगता है कि हम दिग्विजय करने निकल पड़े हैं। विदेशों में होने वाले आर्य सम्मेलनों की बातें पढ़-पढ़कर लगता है कि 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का स्वप्न पूरा होने में अब अधिक देर नहीं है। परन्तु वास्तविक स्थिति कुछ और है। पहले की अपेक्षा मत-मतान्तरों की संख्या कई गुना बढ़ गई है। पहले एक समय में ईश्वर का एक अवतार होता था। अब एक साथ दर्जनों भगवान् धरती पर विचरण कर रहे हैं। पहले ईश्वर का आरोप करके मूर्ति की पूजा की जाती थी। अब मनुष्यों की मूर्त्तियों और समाधियों की पूजा होने लगी है। आर्यसमाज के बड़े-बड़े नेता न केवल समाधियों पर फूल चढ़ाते और सीस झुकाते हैं अपितु स्वयं मन्दिरों का निर्माण कराते हैं। गणेश पूजन की भांति कोई भी शुभ कार्य करने से पहले गांधी समाधि पर फूल चढ़ा कर उसे नमन करना अनिवार्य-सा हो गया है। पहले जो काम व्यक्तिशः होते थे वे अब योजनाबद्ध रूप में सरकारी स्तर पर किये जाने लगे हैं। धार्मिक अन्ध-विश्वासों को बढ़ावा देने के लिए सरकारी खजाने से करोड़ों रुपये खर्च किए जा रहे हैं। देश के बड़े-बड़े नेता अपने अन्धविश्वासों का खुला प्रदर्शन कर रहे हैं। जनता का मार्गदर्शन करने और प्रगतिशील होने का दम भरने वाले बड़े-बड़े अखबार करोड़ों की संख्या में छप कर चमत्कारों और फलित ज्योतिष की सचाई में विश्वास बढ़ा रहे हैं। रेडियो और टेलीविजन के माध्यम से मूर्त्तिपूजा, अवतारवाद, रामलीला आदि का धुंआधार प्रचार हो रहा है। शायद ही ऐसी कोई फिल्म बनती होगी जिसे देखकर मूर्त्तिपूजा और अवतारवाद में श्रद्धा न बढ़ती हो। चरित्रहीनता को बढ़ावा देने और अन्धविश्वासों को फैलाने में आर्यसमाजियों के अखबार भी किसी से पीछे नहीं थे। अब तो प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं के मुखपत्र भी सिनेमा का प्रचार करने में लग गये हैं। आर्यसमाजों में अब अभिनेताओं और अभिनेत्रियों का अभिनन्दन होने लगा है। और आज यह सब कुछ आर्यसमाज के होते हुए हो रहा है।

शास्त्रों का कथन है—'यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः' अर्थात् यत्न

करने पर भी यदि सफलता न मिले तो सोचना चाहिए कि प्रयत्न में कहां दोष है ? दवा करने पर भी अगर मर्ज बढ़ता जाए तो चाहे दवा में दोष हो और चाहे रोग के निदान में—कहीं-न-कहीं दोष अवश्य है । निश्चय ही हमारी प्रचार प्रणाली में दोष आ गया है । विरोधी प्रचार के माध्यम बड़े सशक्त हैं । सिनेमा, रेडियो, अखबार आदि की पहुंच तो प्रतिदिन करोड़ों तक है । हमारे साप्ताहिक सत्संगों की उपस्थिति तो उंगलियों पर गिनी जा सकती है । बरसों बीत जाने पर भी चेहरे नहीं बदलते—चेहरे भी झुर्रीदार । वार्षिकोत्सवों तक में हमारे सब सदस्य भी शामिल नहीं होते, आर्यसमाजेतर लोगों की तो बात ही क्या ! हमारे कार्यक्रम इस प्रकार निश्चित होने चाहियें कि नित नए लोगों में हमारी बात पहुंच सके । एतदर्थ निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान देना चाहिए—

१. पारिवारिक सत्संगों की योजनाबद्ध व्यवस्था की जाए । जिस सदस्य के यहां सत्संग होना हो उसे चाहिए कि आग्रहपूर्वक अपने सम्बन्धियों, पड़ोसियों तथा मित्रों को उसी प्रकार आमंत्रित करे जिस प्रकार अपने यहां होने वाले संस्कार आदि के अवसर पर आमंत्रित किया जाता है । आर्यसमाजी न होने के कारण आर्यसमाज के सत्संग में न जाने वाले लोग भी व्यक्तिगत सम्बन्धों के कारण परिवार में होने वाले सत्संग में सम्मिलित होना अपना कर्त्तव्य समझेंगे । ऐसे सत्संगों में व्यवहारोपयोगी मण्डनात्मक भाषण करना ही उचित होगा । प्रसंग-वश सिद्धान्तों की चर्चा की जा सकती है ।

२. साप्ताहिक सत्संगों का कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि पारिवारिक सत्संग से प्रेरणा पाकर यदि कोई नया व्यक्ति साप्ताहिक सत्संग में पहुंचे तो वह निराश न हो । समस्त कार्यक्रम पहले से निश्चित हों । यज्ञ, भजन और उपदेश का कार्य-क्रम क्रमशः चलता रहे । बीच-बीच में किसी प्रकार कीआपस में भी चर्चा न हो । प्रबंध संबंधी बातें सत्संग की समाप्ति पर शांतिपाठ के पश्चात् अलग से बैठकर हों । सत्संग में केवल ईश्वर भक्ति के भजन हों ।

३. वार्षिकोत्सव में २-३ व्याख्यान खण्डनात्मक अवश्य कराये जायें । मूर्त्तिपूजा, अवतारवाद, मृतक श्राद्ध, अद्वैतवाद, वेदों का अपौरुषेयत्व, वेदों में इतिहास, वेदों में मांस-मदिरा, राधास्वामी, सांईबाबा, रजनीश आदि के मतमतान्तरों, सायण आदि की तुलना में महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की श्रेष्ठता आदि विषयों पर भाषण होने चाहियें । आमंत्रित विद्वानों को पहले ही उनके भाषण के विषय में सूचित कर दिया जाए । उत्सव के कार्यक्रम में वक्ता उनके नाम के साथ उसके भाषण का विषय भी लिखा जाए । ऐसे व्याख्यानों का विज्ञापन मनादी आदि के द्वारा विशेष रूप से किया जाए ।

४. वर्ष में एक बार किसी विषय पर शास्त्रार्थ का आयोजन किया जाये । अपने-अपने विद्वान् का उत्साह बढाने के लिए तथा उत्सुकता के कारण शास्त्रार्थ में आर्यसमाजेतर श्रोता शास्त्रार्थ में सहज ही आ जाते हैं । यहां आकर वे हमारी बात सुनेंगे और उनमें से कुछ-न-कुछ लोगों के हृदय में हमारी सचाई अंकित होगी ।

# आत्म बलिदानी

—डा० रघुवीर वेदालङ्कार—

□ □ □

श्रद्धानन्द, एक अमर रेखा, जिन के विचार प्रत्येक क्षेत्र में मार्ग दर्शक रहे, जिन्होंने प्रत्येक दृष्टि से नयी राह दिखायी। राजनीति में उनका विचार था कि विरोधी से भी सत्य व्यवहार किया जाए··· काश कि उनकी राह हम ज्योतिर्मय रख पाते? —सम्पादक

० ० ० ०

नर आते हैं, चले जाते हैं। सूर्य निकलता है, छिप जाता है। मनुष्य जन्म लेते हैं, मर जाते हैं। **यस्य सर्वमिदं वशे कालांय तस्मै नमः।** जिस महाबली काल के कारण यह सब कुछ हो रहा है, जिसके कारण यह संसार एक चक्र की भांति घूम रहा है, जिसकी माया से दिव्य ज्योतियां संसार में उदित होती है तथा अस्त हो जाती हैं, सर्वरक्षक, सर्वभक्षक, सर्व नियामक, जगत् सञ्चालक महाबली मायावी काल को प्रणाम।

यह सब कुछ होता ही है, हो रहा है, होगा भी। इसे कोई रोक नहीं सकता। यह चक्र चलेगा, इसी प्रकार चलेगा, जैसे अब तक चला आ रहा है। इसमें परिवर्तन असंभाव्य है। सब कुछ नष्ट हो रहा है। प्रत्येक पदार्थ-प्राणी शनैः शनैः अपनी आयु को खो रहा है। कुछ दिन में सब कुछ नष्ट हो जायेगा। कोई शेष नहीं रह पायेगा। नवीन आयेगा पुरातन जायेगा। महात्मा बुद्ध का यह सिद्धान्त अक्षरक्षः सत्य है—सर्वं क्षणि कम् क्षणिकम्।

इस चलाचली में—इस क्षणिकवाद में भी कुछ चीजें शेष रह जाती हैं। कुछ स्मृतियां बच जाती हैं, जिन्हें यह क्रूर काल भी कवलित नहीं कर सकता। हत्यारा जिनका वध नहीं कर सकता। वह वध कर सकता है इस पञ्च भौतिक शरीर का। पानी के बुदबुदे के समान मिठाई के खिलौने के समान, मिट्टी के ढेले के समान वह इसे नष्ट कर सकता है, तोड़ सकता है, मरोड़ सकता है। इस पर गोलियां दाग सकता है। इस पर छुरे से वार कर सकता है। किन्तु ओ हत्यारे! ओ पापी! ओ नीच! ऐ अधम! कुल कलङ्क! जाति कलङ्क! देश कलङ्क! उन स्मृतियों का तू कुछ नहीं बिगाड़ सकता, उन पर वार नहीं कर सकता, उनको नष्ट नहीं कर सकता, जो स्मृतियां जन-जन के अणु-अणु में, श्वास-प्रश्वास में रम गई हैं, घर कर गई हैं। ओ

दुष्ट हत्यारे ! किसी के पञ्च भौतिक शरीर का वध करके, अपने हाथों को खून से रंग कर, अपने मुख पर कालिख पोत कर, अनन्त काल तक अन्धकार से व्याप्त खून से सने हुए उन भोगों को तू भोगता रहा। जिन पर तूने वार किया, जिनका तूने वध करना चाहा, वे समाप्त नहीं हुए। पार्थिव शरीर के नष्ट होने पर भी वे यशः शरीर से अब तक जीवित हैं जीवित रहेंगे। **नास्ति एषां यशःकोय जटामरजज भयम् ।**

कुछ पुण्य स्मृतियां अजर हैं—अमर हैं—शाश्वत हैं। काल की सीमा से परे हैं। संसार समाप्त हो जाए, वे समाप्त नहीं होंगी। किनकी स्मृतियां ? क्या सभी की ? नहीं, अपितु उन यशस्वी-तेजस्वी-पुण्यात्माओं-महात्माओं की जिन्होंने अपना एक-एक परमाणु, श्वास-प्रश्वास देश की जन-जन की सेवा में लगा दिया। उनकी, जिन्होंने अपना सर्वस्वधन-धान्य-ऐश्वर्य-सुख—यहां तक कि प्राणों को भी मातृभूमि की सेवा में अर्पित कर दिया। इन्होंने जो कुछ किया, अपने लिए न करके समस्त मानव जाति के लिए किया। ऐसे ही पुण्यात्माओं-महात्माओं-दिव्यात्माओं में थे स्वामी श्रद्धा-नन्द। आज उनके बलिदान की यह अर्ध शती है। उनकी पुण्य स्मृति शरीर में नये प्राण फूंक देती है, नई चेतना का सञ्चार कर देती है। झंकृत कर देती है जन मानस को तथा जीवन में नई दिशा देती है, नई स्फूर्ति देती है। इस बलिदानी के अमर बलिदान पर महात्मा गांधी ने कहा था—वे वीर की तरह जिये और वीर की तरह मरे।

ऋषिकल्प स्वामी श्रद्धानन्द ! आज तुम्हारी इस बलिदान-अर्धशती पर क्या भेंट तुम्हारी सेवा में अर्पित करूं, किन शब्दों में तुम्हारी स्तुति करूं, किन शब्दों में तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करूं ? ओ उद्यान के माली ! अपने श्रमजल से सिञ्चित कर, पवित्र जाह्नवी के सुरम्य तट पर, जिस गुरुकुलोद्यान को तूने स्थापित किया, उसी के सुगन्धित पुष्पों से थोड़े बहुत विद्यामधु का सञ्चय करने वाला उसी उद्यान का एक चञ्चरीक ही तो हूं मैं। इस भ्रमर की श्रद्धा भरी मूक गुञ्जार तेरे पास तक अवश्य पहुंच रही होगी। बस, यही है मेरे पास तेरे ऊपर अर्पण करने के लिए। इसे स्वीकार करो। जो शब्द आपने अपनी लेखनी से अपने गुरु महर्षि दयानन्द को अर्पित किये थे, आज उन्हीं शब्दों को उसी रूप में, उसी भाव से, आपका यह विनीत शिष्य आपकी सेवा में अर्पित कर रहा है—"तुम वाणी द्वारा प्रचार करने वाले तत्त्ववेत्ता ही न थे परन्तु जिन सच्चाइयों का तुम संसार में प्रचार करना चाहते थे उनको क्रिया में ला-कर सिद्ध कर देना भी तुम्हारा ही काम था। भगवन् ! मैं तुम्हारा ऋणी हूं। उस ऋण से मुक्त होना चाहता हूं। इसलिए जिस परमपिता की असीम गोद में तुम परमानन्द का अनुभव कर रहे हो, उसी से प्रार्थना करता हूं कि मुझे तुम्हारा सच्चा शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करें।"

स्वामी श्रद्धानन्द की पुण्य स्मृति हम किन-किन रूपों में करें। अमृतसर कांग्रेस के अवसर पर आपने कहा था।

"यदि जाति को स्वतन्त्र देखना चाहते हो स्वयं सदाचार की मूर्ति बन कर अपनी सन्तान के सदाचार की बुनियाद रख दें। जब सदाचारी ब्रह्मचारी हो शिक्षक

और कौमी हो शिक्षा पद्धति, तब ही कौम की जरूरतों को पूरा करने वाले नौजवान निकलेंगे।"

अपने इस स्वप्न को पूरा करने के लिए ही उन्होंने पवित्र भागीरथी के तट पर गुरुकुल की स्थापना की तथा उसमें 'भलाई की शुरूआत घर से' के अनुसार ही सर्व प्रथम अपने ही दोनों पुत्रों को प्रविष्ट कराया। महर्षि दयानन्द का, स्वामी श्रद्धानन्द का भक्त कहलाने वाले आज के आर्यसमाजी इस घटना से प्रेरणा क्यों नहीं लेते ? यदि सभी आर्य समाजी अपनी सन्तानों को ही गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति के अर्पण कर दें तो फिर गुरुकुल कांगड़ी जैसे विद्या तीर्थों में छात्रों की न्यूनता कैसे रह सकती है ! हां यदि वह प्रणाली आज के जीवन से सामस्वरूप नहीं रख पा रही है तो इस ओर ध्यान देना चाहिए। गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली पर उनका इतना बल इसलिए था कि इसमें जीवन सुधार की शिक्षा मिलती है (यद्यपि आज कल इसके विपरीत भी पाया जाने लगा है) ११ वर्ष तक काशी की विद्वन्मंडली से अध्ययन करने के उपरान्त भी स्वामी श्रद्धानन्द उस पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं 'इन विद्वानों से एक भी शिक्षा जीवन सुधार के लिए न मिली। वह शिक्षा की विधि अब तक भारत सन्तान के जीवन को खोखला कर रही है' इसी खोखले पन को मिटाने के लिए उन्होंने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का उद्धार किया था। यह पवित्र प्रणाली आज योग्य व्यक्तियों के अभाव में जीर्ण शीर्ण गाड़ी की तरह चरमरा रही है। आज वे ही विद्या तीर्थ पद-लोलुप, सत्ता के भूखे झगड़ालू व्यक्तियों की राजनीति का अखाड़े बने हुए हैं। स्वामी श्रद्धानन्द के ही शब्दों में 'भगवान् ! आर्यसमाजियों की आंखें जाने कब खुलेंगी ?'

वैदिक धर्म के उपदेशकों, एवं आर्य समाजियों के जीवन को स्वामी जी किस प्रकार का देखना चाहते थे, यह इनके निम्न शब्दों से स्पष्ट है—"हम सबके कर्तव्य और मन्तव्य एक होने चाहिएं। इस लिए जो वैदिक धर्म के एक-एक सिद्धान्त के अनुसार अथवा जीवन नहीं ढाल रहा है उसे उपदेशक बनने का साहस नहीं करना चाहिए भाड़े के टट्टुओं से धर्म का प्रचार नहीं हो सकता। इस पवित्र कार्य के लिए स्वार्थ-त्यागी पुरुषों की आवश्यकता है।" आज हमारे वैदिक-धर्म-प्रचार की न्यूनता एवं प्रमुख हीनता का कारण स्वामी जी के उक्त शब्दों में निहित है।

स्वामी जी की दृढ़ धारणा थी कि बिना जीवन-परीक्षण किये किसी को केवल चन्दे के कारण से आर्यसमाज में प्रविष्ट न करना चाहिए, न होना चाहिए। जब स्वामी जी के मद्यपान छोड़ने पर देवराज जी आदि ने स्वामी जी को आर्यसमाज का प्रधान बनाना चाहा तो उन्होंने उत्तर दिया था—बिना मेरे परिश्रम के मुझे प्रधान बनाना बड़ा ही आश्चर्यजनक है। गुरुदासपुर आर्यसमाज के विषय में उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था 'अब अधिकारी हैं तो धनाढ्य, किन्तु सब शराबी, कबाबी और शिकारी है। इस लिए समाज की सेवा करने के स्थान में वे उल्टे हानिकारक हो रहे हैं ? उन्होंने समाज को बन्द करते हुए स्वयं घोषणा की थी—"आर्य अधिकारियों के पतित हो जाने से अब फिल्लौर में कोई आर्यसमाज नहीं है" क्या वर्तमान समाजों सभाओं के पदाधिकारी तथा अन्य आर्यसमाज भी स्वामी जी के इन शब्दों पर चलने का

साहस रखते हैं ? आज तो मतदान के लिए चन्दादाता आर्यसमाजियों का ही सर्वत्र बोलबाला है। तभी तो यह दशा है। स्वामी जी के शब्दों में ही सुनिए "कैसा स्वर्णिम समय था वह, जब सच्चाई का राज्य था, और कहां आज का समय कि दुराचारी और आपापन्थी आदमी भी मुंह छिपा कर समाज से पृथक् होने के स्थान में अपना जत्था खड़ा करके समाज में दनदनाते और उल्टे कोतवाल का डांटने वाले चोर के समान समाज को कलंकित करते रहते हैं" स्वामी जी की यह टिप्पणी क्या आज की दशा के लिए ही तो नहीं थी ?

राज्य के लिए भी धर्म को आवश्यक समझते हुए स्वामी जी एक स्थान पर लिखते हैं—"एक ऐसे धार्मिक दल की आवश्यकता है जो विरोधी को धोखा देना भी वैसा ही पाप समझता हो, जैसा कि अपने भाई को। पोलिटिकल जगत् में ऐसे ही दल की आवश्यकता है।"

आर्यसमाजियों के लिए—उपदेशकों के लिए राजनीतिज्ञों के लिए बड़ी निर्भीकता से स्वामी जी ने उक्त शब्दों में कड़ी फटकार लगाई है। उनकी यह निर्भीकता केवल शब्दों तक ही सीमित न थी अपितु आचरण में भी ओतप्रोत थी। तभी तो एक बार अपने अंग्रेज अधिकारी (कर्नल) द्वारा उनको गुस्ताख कह दिये जाने पर मुंशीराम के रूप में उन्होंने कर्नल को दण्ड देने के लिए हण्टर सम्भाल लिया था। चांदनी चौक के घण्टाघर की घटना जब तक दिल्ली है, तब तक नहीं भुलाई जा सकती।

ये हैं उस महामानव की कुछ स्मृतियां। इनके पीछे थी उनकी श्रद्धा-आशा-सत्य एवं ईश्वर विश्वास। उनकी डायरी में लिखा है। मेरा जीवन आशातीत व्यतीत हुआ है। जब तक दम में दम है, मनुष्य को तब तक बेदम नहीं होना चाहिए—यह मेरा सिद्धान्त है। मनुष्य को कभी निराश न होना चाहिए। परमात्मा पर दृढ़ विश्वास रखना चाहिए।' वीर संन्यासी ! महामानव ! सत्य साधक ! श्रद्धामय श्रद्धानन्द ! तुम्हारी बलिदान अर्धशती पर तुमको शतशत प्रणाम।


१९७९ की डायरी

# वैदिक—दैनन्दिनी

**भारी संख्या में मंगाएं : भेंट करें**

**कागज अत्यन्त मंहगा हो जाने पर भी हम सजिल्द २५०) सैंकड़ा सजिल्द ३२५) सैंकड़ा भेंट कर रहे हैं।**

संध्या - हवन - प्रार्थना मन्त्र - भजन - दैनिक सूक्तियां
और अनेक विशेषताएं

**दयानन्द संस्थान वेद मन्दिर दिल्ली-३६**

# वैदिक ईश्वरवाद

**—स्व० स्वामी धर्मानन्द जी विद्यामार्तण्ड—**

□ □ □

ईश्वर को सभी आस्तिक मानते हैं किन्तु उसके स्वरूप पर मतभेद ही विवाद का कारण बनता है। वेद ईश्वर को किस रूप में प्रस्तुत करता है इसे भी पाश्चात्य विद्वानों ने भ्रांत रूप से उपस्थित किया है। सत्य को जानने के लिए स्वर्गीय विद्वान् का यह लेख हम उनके प्रति श्रद्धांजलि के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। —सम्पादक

o o o o

वेदों का निष्पक्षपात होकर यदि हम अनुशीलन करें तो हमें स्पष्ट ज्ञात होता है कि वेद एक ही ईश्वर की पूजा का प्रतिपादन करते हैं जो सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वव्यापक, सर्वत्र, सर्वशक्तिमान्, निराकार, निर्विकार, अजन्मा, अविनाशी, न्यायकारी, दयालु, जगत् का कर्ता, धर्ता और संहर्ता है।

य एक इत् तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥
ऋ० ६।५१।१६

इस मन्त्र में स्पष्ट उपदेश है कि हे मनुष्य ! (यः) जो (एकः इत्) एक ही (कृष्टीनां विचर्षणिः) सब मनुष्यों का ठीक-ठीक देखने वाला सर्वज्ञ (वृषक्रतुः) सुखों की वर्षा करने वाले कर्म वा ज्ञान वाला सर्वशक्तिमान् (पतिः जज्ञे) सबका स्वामी है (तम् उ स्तुहि) तू सदा उसी की स्तुति कर।

'एकः इत्' इन शब्दों से एक परमेश्वर की ही स्तुति और पूजा का भाव अत्यन्त स्पष्ट है। अन्य भी हजारों वेदमन्त्र इसी बात का उपदेश करते हैं जिनमें से विस्तार-भय से केवल कुछ ही मन्त्रों का यहां निर्देश किया जाता है।

ऋग्वेद ८।१।१ में कहा है:—

मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत् ॥

हे (सखायः) मित्रो ! (मा चित् अन्यद् विशंसत) तुम किसी अन्य की विशेष स्तुति अर्थात् प्रार्थना उपासना न करो और इस प्रकार अन्यों की स्तुति प्रार्थना करके

(मा रिषण्यत) मत दुःख उठाओ। सदा एकान्त में और (सचासुते) मिलकर किये हुए यज्ञों में (वृषणम्) सुख, शान्ति और आनन्द की वर्षा करने वाले (इन्द्रम् इत्) एक परमेश्वर की ही (स्तोत) स्तुति करो (च) और (मुहुः) बार-बार उसी के (उक्था शंसत) स्तुति वचनों का उच्चारण करो।

कितने स्पष्ट शब्दों में इस मन्त्र में एक परमेश्वर की ही स्तुति प्रार्थना तथा उपासना करने का विधान करते हुए, जो सुख शान्ति आनन्द का वर्षक है, अन्यों की स्तुति का निषेध किया गया है और उसे दुःखों का कारण बताया गया है, इस बात को पाठक ध्यान से देखें। इदि परमैश्वर्ये धातु से इन्द्र शब्द बनता है अतः उसका अर्थ परमेश्वर है इसमें सन्देह का कारण ही नहीं। श्री सायणाचार्यादि पौराणिक भाष्यकारों को भी बहुत स्थानों पर इन्द्र का परमेश्वर यही अर्थ करने को विवश होना पड़ा है। उदाहरणार्थ—

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशोमहि।

इस सामवेद म० २५६ के भाष्य में सायणाचार्य ने लिखा है—"(इन्द्र) अनेक गुण-विशिष्ट परमात्मन्"

इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि शब्दों को देखकर कई लोग भ्रम में पड़ जाते हैं और समझने लगते हैं कि वेद अनेकेश्वरवाद के समर्थक हैं किन्तु वेदों के निष्पक्षपात अनुशीलन से यह भ्रम सर्वथा दूर हो जाता है। ऋग्वेद के प्रथम ही मण्डल में यह स्पष्टतया बताया गया है कि—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

ऋ० १।१६४।४६

अर्थात्—(विप्राः) विद्वान् ज्ञानी लोग (एकंसद्) एक ही सत्स्वरूप परमेश्वर के विविध गुणों को प्रकट करने के लिये इन्द्र मित्र वरुण आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। परमैश्वर्य सम्पन्न होने से पहले उस परमेश्वर को इन्द्र, सबका स्नेही होने से मित्र, सर्वश्रेष्ठ और अज्ञानान्धकार निवारक होने से (वरणीयः, अज्ञानान्धकारनिवारको वा) वरुण ज्ञानस्वरूप और सबका अग्रणी नेता होने से अग्नि (अञ्चु-गति पूजनयोः), सबका नियामक होने से यम, आकाश वा जीवादि में अन्तर्यामिरूपेण व्यापक होने के कारण मातरिश्वा आदि नामों से उस एक की ही स्तुति की जाती है।

यूरोप के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् विचारक श्री अर्नेष्ट वुड् ने An Englishman Defends Mother India नामक अपनी पुस्तक में इस मन्त्र का अनुवाद देते हुए यह टिप्पणी की—

'In the eyes of the Hindus, there is but one Supreme God. This was stated long ago in the Rig Veda, in the following words :—

'Ekam Sad vipraa bahudha vadanti', which may be translated : 'The sages name the One Being variously.'

अर्थात् हिन्दुओं की दृष्टि में एक ही परमेश्वर है। इस सत्य का प्रतिपादन बहुत प्राचीनकाल में ऋग्वेद में 'एकंसद्विप्राः बहुधा वदन्ति' इन शब्दों द्वारा किया गया था जिनमें स्पष्ट बताया गया है कि ज्ञानी एक ही परमेश्वर को अनेक नामों से पुकारते हैं।

यूरप के संस्कृतज्ञों में अपने समय में सबसे अधिक सुप्रसिद्ध प्रो० मैक्समूलर को भी जिन्होंने अपने पहले ग्रन्थों में वेदों को हीनोथीइज्म अथवा अति-स्तुति देवतावाद का प्रतिपादक बताने का प्रयत्न किया था यह बात अपने अन्तिम ग्रन्थ The Six Systems of Philosophy में जो महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका के पढ़ने के बाद लिखा गया था, स्वीकार करनी पड़ी कि वेदों में इन्द्र, मित्र, अग्नि, वरुण, मातरिश्वा, प्रजापति इत्यादि शब्दों द्वारा वस्तुतः एक ही ईश्वर का प्रतिपादन किया गया है जो अनन्त और निर्विकार है।

प्रो० मैक्समूलर के अपने शब्द निम्नलिखित हैं:—

'Whatever is the age when the collection of Rig Veda Sanhita was finished, it was before that age, that the conception had been formed that there is but one, one Being neither male nor female, a Being raised high above all the conditions and limitations of personality and of human nature and nevertheless the *Being that was really meant by all such names* as Indra, Agni, Matarishwan and by the name of Prajapati—Lord of creatures."

—The Six Systems of Philosophy.

इसके मुख्य अंश का भाव ऊपर दिया ही जा चुका है।

प्रो० मैक्समूलर तथा यूरप के कई अन्य विद्वान् इस प्रकार के स्पष्ट एकेश्वर-वाद प्रतिपादक वेदमन्त्रों को ईसाइयत अथवा विकासवाद के पक्षपात के कारण पीछे की रचना बताने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु यह उनकी मनघड़न्त कल्पना है जो सर्वथा निराधार है। इस पक्षपात का स्पष्ट प्रमाण प्रो० मैक्समूलर के Vedic Hymns नामक ग्रन्थ के निम्नलिखित लेख से मिलता है। यहां हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋ० १०।१२१) का अनुवाद करते हुए जिसमें "हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत्।"

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद् राजा जगतो बभूव।
यो देवेष्वधिदेव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम।

इत्यादि मन्त्रों में अत्यन्त स्पष्ट और प्रबल शब्दों में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन है। जैसा कि स्वयं प्रो० मैक्समूलर ने 'History of Ancient Sanskrit Literature' में लिखा है—

'I add only one more hymn (Rig 10. 121) in which the idea of one God is expressed with such power and decision that it will make us hesitate before we deny to the Aryans an instinctive monotheism.'

अर्थात् मैं एक और सूक्त (ऋ० १०।१२१) का उल्लेख करना चाहता हूं जिसमें एक ईश्वर का भाव इतनी प्रबलता और स्पष्टता के साथ प्रकट किया गया है कि हमें अत्यन्त संकोच करना पड़ेगा पूर्व इसके कि हम आर्यों के एक नैसर्गिक एकेश्वर-वाद से इन्कार करें।

इत्यादि शब्दों द्वारा स्वीकार किया था। वे टिप्पणी चढ़ाते हैं—

'This is one of the hymns which has always been suspected as modern by European interpreters.'

(Vedic Hymns p. 3)

अर्थात् यह उन सूक्तों में से है जिन पर यूरोपीय भाष्यकारों ने सदा नवीन होने का सन्देह किया है।

'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।' ऋ० १०।१२१।१० इस मन्त्र पर प्रो० मैक्समूलर टिप्पणी चढ़ाते हैं—

"This last verse is to my mind the most suspicious of all."

(p. 4)

अर्थात् यह अन्तिम मन्त्र जिसमें परमेश्वर को सम्बोधन करते हुए कहा गया है कि तुम्हें छोड़कर अन्य कोई भी इस सारे जगत् में व्यापक और इसका स्वामी नहीं है, मेरी सम्मति में सबसे अधिक सन्देहास्पद है।

यह सन्देह इसलिये किया गया है कि ईसाइयत के पक्षपात के कारण, प्रबल प्रमाण होते हुए भी, ये लोग इस बात को मानने में संकोच करते हैं, और इसके लिये उद्यत नहीं होते कि वेदों में एकेश्वरवाद की उच्च शिक्षा पाई जाती है।

ऋ० ६।२२।१ में कितनी स्पष्टता से एक सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमेश्वर की स्तुति और उपासना का विधान है। इसको देखिये—

य एक इद् हव्यश्चर्षणीनाम् इन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान् सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्॥

अर्थात् (यः) जो (इन्द्रः) परमेश्वर (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यों का (एकः इत्) एक ही (हव्यः) पूजनीय है, (तम्) उसकी (आभिः गीर्भिः) इन वाणियों से (अभि अर्च) चारों ओर से प्रेमपूर्वक पूजा कर। (यः) जो (वृषभः) सुख शान्ति आनन्दवर्षक (वृष्ण्यावान्) सर्वशक्तिमान् (सत्यः) सत्यस्वरूप (सत्वा पुरुमायः सह-स्वान् पत्यते) अत्यधिक बुद्धिशाली-सर्वज्ञ तथा सब प्रकार के बल से सम्पन्न होने के कारण सबको पराजित करने वाला सारे जगत् का स्वामी है। वही परमेश्वर एक मात्र पूजनीय है।

इस प्रकार मन्त्र में परमेश्वर को सर्वव्यापक, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, सारे जगत् का स्वामी बताते हुए उसकी मानस पूजा का विधान किया गया है। इससे स्पष्ट एकेश्वरवाद का प्रतिपादन क्या नहीं हो सकता है इसे निष्पक्ष पाठक विचारें।

ऋ० १०।८२ में एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रतिपादन सभी मन्त्रों में विश्वकर्मा अथवा जगत्कर्ता के नाम से परमेश्वर का स्मरण करते हुए किया गया है। ७ मन्त्रों

के इस छोटे से सूक्त में ३ बार 'एकः' शब्द का परमेश्वर के लिये प्रयोग हुआ है। (म० २, ३, ६ में)

म० २ में विश्वकर्मा अर्थात् जगत्कर्ता परमेश्वर के गुणों का निम्न प्रकार वर्णन करते हुए उसके एक होने का प्रतिपादन है।

विश्वकर्मा विमना आद् विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः ।।

ऋ० १०।८२।२

इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि वह (विश्वकर्मा) जगत्कर्ता परमेश्वर (विमना आत् विहायाः) विविध मनों का स्वामी, आकाश के तुल्य व्यापक, (धाता) संसार का धारण करने वाला, (विधाता) विशेष रूप से सूर्य चन्द्र, तथा लोक-लोकान्तरों का धारण और पोषण करने वाला, (परमः) अत्यन्त उत्कृष्ट, (उत) और (संदृक्) सर्वज्ञ है, (यत्र) जिस परमेश्वर के विषय में विद्वान् (आहुः) कहते हैं कि (सप्त-ऋषीन् परे) वह सात इन्द्रियों से परे (एकम्) एक ही है, और (यत्र) जिस परमेश्वर के आश्रय में (तेषाम्) उन इन्द्रियादि के (इष्टानि) अभिलषित सब भोग्य पदार्थ (इषा) उस प्रभु की प्रेरक शक्ति से (संमदन्ति) भली प्रकार हर्ष के कारण बनते हैं।

यहां ईश्वर के जगत्कर्ता, धर्ता और सर्वज्ञ होने का प्रतिपादन करते हुए उसे इन्द्रियातीत और एक ही बताया गया है। यह अति स्पष्ट है जिसमें सन्देह का अणु-मात्र भी कारण नहीं।

इस सूक्त का म० ३ तो इस प्रकरण में अत्यधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है जिसमें परमेश्वर को एक और देवों के सब नामों को धारण करने वाला बताया गया है। मन्त्र इस प्रकार है :—

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ।।

ऋ० १०।८२।३, यजु० १७।२७, अथर्व० २।१।३

अर्थात् (यः नः पिता) जो परमेश्वर हमारा पालक है, (जनिता) उत्पादक है, और (यः) जो विधाता) विशेष रूप से हमारा धारण करने वाला, और (विश्वा धामानि) सब स्थानों लोकों और (भुवनानि) उत्पन्न पदार्थों को (वेद) जानता है, (यः देवानां नामधा एकः एव) जो सब देवों—इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम इत्यादि के नाम को प्रधानतया धारण करने वाला एक ही देव है (तम्) उस (संप्रश्नम्) अच्छी प्रकार से जानने योग्य परमेश्वर की ओर ही (अन्या भुवना) अन्य सब लोक और प्राणी (यन्ति) गति कर रहे हैं।

यहां परमेश्वर को पालक, उत्पादक, पिता, सर्वज्ञ, सर्वधारक बताते हुए स्पष्ट कहा है कि वह एक ही है जिसके अनेक देवताओं के अनेक नाम है अर्थात् अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, रुद्रादि नाम प्रधानतया उस एक गुण समुद्र परमेश्वर के हैं, गौण रूप से

अन्यों के हैं। इससे बढ़कर एकेश्वरवाद का प्रतिपादन और अनेकेश्वरवाद का निराकरण और क्या हो सकता है ?

उसी सूक्त के म० ६ में पुनः एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रतिपादन निम्न शब्दों में किया गया है जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है :—

तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ।।

इस मन्त्र के पूर्वार्ध में प्रकृति और उसके परमाणुओं को सबसे पूर्व धारण करने वाला वही एक परमेश्वर है यह कथन कर, उत्तरार्ध में बताया है कि इस अज– प्रकृति, सत्त्व या प्रधान की (नाभा) नाभि में (एकम्) एक ब्रह्मतत्त्व ही (अधि अर्पितम्) ऊपर अधिष्ठाता रूप में विराजमान है, (यस्मिन्) जिसके आधार पर (विश्वानि भुवनानि तस्थुः) सब लोक स्थित हैं—जो सारे जगत् का संचालक और अध्यक्ष है। इस प्रकार न केवल एकेश्वरवाद का इस मन्त्र में प्रतिपादन है किन्तु अज के नाम से प्रकृतितत्त्व का, और 'यत्र देवाः 'समगच्छन्त विश्वे' अर्थात् जिसके साथ सत्यनिष्ठ सब ज्ञानी लोग अपने को उपासना द्वारा संयुक्त करते हैं यह कहकर पृथक् आत्माओं की सत्ता का निर्देश करके अद्वैतवाद का भी निराकरण किया गया है। ब्रह्म, जीव और प्रकृति की सत्ता मन्त्र के शब्दों से स्पष्ट सिद्ध होती है।

'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।'

इस ऋ० १।१६४।४६ के एकेश्वर प्रतिपादक वचन को मैं इस लेख में पहले उद्धृत कर चुका हूं। उसी के समान वचन ऋ० १०।११४।५ में भी है जहां कहा है :—

'सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।।'

अर्थात् (कवयः) क्रान्तदर्शी तत्त्वज्ञानी लोग, (सुपर्णम्) सुन्दर कर्म करने वाले परमेश्वर को (एकं सन्तम्) एक होते हुए भी (वचोभिः) वैदिक वचनों से (बहुधा कल्पयन्ति) अनेक रूपों में—गुणसूचक अनेक नामों के द्वारा वर्णित करते हैं। अर्थात् इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि इत्यादि अनेक नामों से उसी एक परमेश्वर का ही ज्ञानी लोग वर्णन करते हैं। काव्यमयी भाषा में भी उसी का अनेक कल्पनाओं द्वारा सर्वसाधारण को बोध देने के लिये प्रतिपादन करते हैं।

ऐसे स्पष्ट मन्त्रों के विषय में टालने का एक प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने निकाल रक्खा है कि यह मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल का है जो पीछे से बनाया गया। वस्तुतः यह भी एक मनघड़न्त कल्पना है जिसका 'वेदों का यथार्थ स्वरूप' नामक पुस्तक में मैंने सप्रमाण निराकरण किया है। तथापि अन्य मण्डलों में से कुछ और स्पष्ट प्रमाण देने में कोई हानि नहीं।

ऋ० ८।२५।१६ में मन्त्र आता है :—

अयम् एक इत्था पुरूरु चष्टे वि विश्पतिः । तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ।।

अर्थात् (अयम्) यह (विश्पतिः) प्रजाओं का स्वामी (एकः) एक ही है

(इत्था) इस प्रकार निश्चय से वह एक ही संसार का स्वामी, (पुरु उरु विचष्टे) सब प्रजाओं का ठीक २ निरीक्षण करता है—सब कुछ जानता है। हम (वः) तुम प्रजाओं के कल्याण के लिये (तस्य व्रतानि अनुचरामसि) उसके व्रतों का अनुसरण करते हैं—उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं। यहां भी स्पष्टतया परमेश्वर को एक और सारी प्रजाओं का स्वामी बताते हुए उसकी आज्ञा पालने का आदेश है।

ऋ० ८।१।२७ में भी परमेश्वर को एक बताते हुए उसके गुणों का वर्णन इन शब्दों में किया गया है :—

य एको अस्ति दंसना महां उग्रो अभि व्रतैः। ऋ० ८।१।२७

अर्थात् जो परमेश्वर एक अत्यन्त आश्चर्यजनक, महान् और अपने व्रतों के कारण अति तेजस्वी और दुष्टों के लिये भयंकर है उसी का ध्यान सबको करना चाहिये। ऋ० १।१००।७ में भी—

स विश्वस्य करुणस्येश एकः ॥

यह कहकर परमेश्वर को सब करुणापूर्ण शुभ कर्मों का एक मात्र स्वामी बताया गया है। ऋ० १।७।९ का निम्न मन्त्र भी परमेश्वर को सारे संसार का और सब मनुष्यों का एक ही सम्राट् घोषित करता हुआ एकेश्वरवाद का प्रबल समर्थक है।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति। इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥

अर्थात् (यः) जो (इन्द्रः) परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा (चर्षणीनाम्, पञ्च-क्षितीनाम्) सब मनुष्यों का जो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र अतिशूद्र इन विभागों में बंटे हुए हैं और (वसूनाम्) सारे ऐश्वर्यों का स्वामी है, उसी की उपासना करो। यह ऋग्वेद के दशम मण्डल का नहीं। जिसको कई पश्चात्य विद्वानों ने अपनी मनघड़न्त कल्पना से पीछे की रचना बताने का यत्न किया है किन्तु प्रथम मण्डल का मन्त्र है। इसी प्रथम मण्डल के सूक्त ५४ का १४वां मन्त्र भी परमेश्वर को एक और अनुपम बताते हुए कितनी स्पष्टता से एकेश्वरवाद का विशुद्ध रूप में प्रतिपादन करता है :—

न यस्य द्यावापृथिवी अनुव्यचो न सिन्धयो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्त युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥
ऋ० १।५४।१४

अर्थात् जिस परमेश्वर के आकाश और पृथिवी, समुद्र और अन्य लोक-लोकान्तर अन्त नहीं पा सकते वह सब में ओत-प्रोत है। मेघ, बिजली आदि भी गर्जते या वृष्टि करते हुए उसकी महिमा को सूचित करते किन्तु उनका अन्त पाने में असमर्थ हैं। ऐसा वह परमेश्वर (एकः) एक ही है। उसने (आनुषक्) सब में व्याप्त होकर (अन्यत्) अपने से भिन्न इस (विश्वम्) संसार को (चकृषे) बताया है।

इससे न केवल एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रतिपादन बल्कि अद्वैतवाद का स्पष्ट निषेध भी होता है। क्योंकि अद्वैतवाद के अनुसार तो केवल ब्रह्म ही सत्य है जगत् मिथ्या है।

सामवेद म० ३७२ में बड़ी उत्तमता से परमेश्वर के एकमात्र पूज्य होने का प्रतिपादन है। यही मन्त्र अथर्व वेद में भी है—

समेत विश्व ओजसा पतिं दिवो य एक इद् भूरतिथिर्जनानाम्।
स पूर्व्यो नूतनम् आजिगीषन् तं वर्तनीरनु वावृत एकमित पुरु ।।
सामवेद म० ३७१, अथर्व, ७।२१।१

अर्थात् हे मनुष्यो ! तुम सब सरल भाव और आत्मिक बल के साथ परमेश्वर की ओर—उसका ध्यान-भजन के लिये आओ, जो (एकः इत्) एक ही मनुष्यों में अतिथि की तरह पूजनीय अथवा अत-सातत्यगमने सर्वव्यापक है। वह सनातन-नित्य है और नए उत्पन्न पदार्थों के अन्दर भी व्याप रहा है। ज्ञान, कर्म भक्ति के सब मार्ग उसकी ओर जाते हैं। वह निश्चय से एक ही है।

इससे स्पष्ट वैदिक एकेश्वरवाद का प्रतिपादन हो रहा है। तथापि आश्चर्य की बात है कि प्रो० मैक्समूलर आदि कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों में विशुद्ध एकेश्वरवाद (Monotheism) के स्थान पर Henotheism वा उपास्य श्रेष्ठतावाद का प्रतिपादन किया है। उनका कथन यह है कि वैदिक ऋषि अनेकेश्वरवादी थे किन्तु वे जिस देवकी स्तुति करने लगते थे भाटों कीतरह उसीको सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् तथा जगत् का स्वामी मान लेते थे और उस समय अन्य सबको उसके आश्रित तथा उसकी अपेक्षा हीन समझते थे। इस प्रकार वे इन्द्र, मित्र, वरुणादि भिन्न-भिन्न देवों की स्तुति करते रहते थे। इस कल्पितवाद का एक तो ऊपर उद्धृत स्पष्ट प्रमाणों से निराकरण हो जाता है और दूसरा निम्न प्रकार के सैकड़ों मन्त्रों से जो वेदों में स्थान २ पर पाये जाते हैं उस कल्पना की भित्ति सर्वथा चकनाचूर हो जाती है जिनमें वरुण, मित्र, इन्द्र विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, महादेव इत्यादि को अभिन्न वा एक बताया गया है। यथा—

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ।।
(ऋ० २।१।३)

त्वमग्ने राजा वरुणे धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ।।
(ऋ० २।१।४)

इन मन्त्रों में परमात्मा को अग्नि (ज्ञान स्वरूप नेता) के नाम से सम्बोधित करते हुए कहा है कि तू ही इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा और ब्रह्मणस्पति है। तू ही वरुण, मित्र, अर्यमा आदि नामों से पुकारा जाता है। अर्थात् परमैश्वर्य सम्पन्न होने से वही परमेश्वर इन्द्र, सर्वव्यापक होने से विष्णु सबसे बड़ा होने से ब्रह्मा, ज्ञान स्वामी होने से ब्रह्मणस्पति, सर्वोत्तम व अज्ञानान्धकार निवारक होने से वरुण, सबका स्नेही होने से मित्र, और न्यायकारी होने से अर्यमा के नाम से याद किया जाता है।

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ।
सोऽग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः ।।

अथर्व० १३।४।४।५

इस मन्त्र से भी कहा गया है कि वही परमात्मा अर्यमा, वरुण, रुद्र, महादेव अग्नि, सूर्य, महायम इत्यादि नामों से पुकारा जाता है।

वह एक परमात्मा ही नमस्कार करने के योग्य है इस बात को

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।
तं त्वा यामि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ।।

अथर्व० २।२।१

मृडाद् गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिः, एक एव नमस्यः सुशेवाः ।।

अथर्व० २।२।२

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते स एष एक एकवृदेक एव ।।

अथर्व० १३।४।२०

इत्यादि में भी स्पष्टतया बताया गया है—

'एक एव नमस्यः विक्षु ईड्यः एक एव नमस्यः सुशेवाः ।'

ये शब्द स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं जिनसे जीवेश्वर भेद भी स्पष्ट है। इन में कहा गया है कि वह 'एकः एव नमस्यः' एक परमात्मा ही नमस्कार के योग्य है। वह 'विक्षु ईड्यः' सारी प्रजाओं में पूजनीय है क्योंकि वह सुशेवाः अर्थात् उत्तम सुख दाता है। वही 'भुवनस्य पति'—सारे संसार का स्वामी और रक्षक है। वह परमात्मा एक ही है—दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ, दो, दस परमेश्वर नहीं। वह (एकः) एक है, (एकवृत्) एक होकर वह सर्वव्यापक है, (एकः एव) वह एक ही है। इससे अधिक स्पष्ट एकेश्वरवाद का प्रतिपादन और क्या हो सकता है ?

# वैदिक ईश्वर का स्वरूप

यदि वैदिक ईश्वरवाद के विषय में कोई एक ही मन्त्र उद्धृत करना हो जिसमें सागर को गागर में भर दिया गया है तो वह निःसन्देह यजु० ४०।८ है जहां—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ॐ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।

इन शब्दों द्वारा बताया गया है कि ज्ञानी उस परमेश्वर को प्राप्त करता है जो सर्वशक्तिमय, सर्वथा शरीर रहित, नसनाड़ी के बन्धन से रहित, निराकार, निर्विकार,

शुद्ध, पवित्र, तथा सर्वथा पाप रहित है। वह सर्वज्ञ, मन का भी साक्षी, सर्वव्यापक स्वयम्भू है जो (शाश्वतीभ्य: समाभ्य:) अनादि जीवरूप प्रजाओं के कल्याणार्थ (याथातथ्यत:) यथार्थ रूप से सब पदार्थों को बनाता और वेद द्वारा उनका उपदेश करता है। यहां 'शाश्वतीभ्य: समाभ्य:' इन शब्दों से अनादि नित्य जीवों की सत्ता और 'याथातथ्यत: अर्थात् व्यदधात्' से जगत् की यथार्थता (न कि 'ब्रह्मसत्यंजगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:) इस अद्वैत-वेदान्त सिद्धान्तानुसार उसका मिथ्यात्व) भी स्पष्ट है।

## जीवेश्वर भेद का अत्यन्त स्पष्ट प्रतिपादन

वेदों में जीवेश्वर भेद का स्पष्ट प्रतिपादन सैकड़ों मन्त्रों में है क्योंकि इस बात को सभी जानते हैं कि वेदों में अधिकतर मन्त्र प्रार्थना के हैं और प्रार्थना उपास्य-उपासक सेव्य-सेवक, पिता-पुत्र आदि का भेद मानकर ही सम्भव है। तथापि लेख के विस्तारभय से अभी निम्नलिखित अति स्पष्ट मन्त्रों का निर्देश मात्र ही पर्याप्त है जिनके अर्थ के विषय में भी सन्देह का अवकाश नहीं, यदि निष्पक्षपात दृष्टि से विचार किया जाए।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।। ऋ० १।१६४।२०

इस मन्त्र में जीवात्मा और परमात्मा की दो पक्षियों से उपमा देते हुए, जो दोनों चेतन और नित्य होने के कारण सहयोगी मित्र के समान होते हुए, नित्यता की दृष्टि से समान प्रकृति-रूप-वृक्ष पर बैठते हैं यह कहा है कि (तयो:) उन दोनों में से एक कर्मानुसार (स्वादु पिप्पलम्) स्वादु वा अस्वादु फल का भोग करता है, और (अन्य:) दूसरा कर्मफल का भोग न करता हुआ (अभि चाकशीति) सर्वज्ञ साक्षी बनकर जीवकृत कर्मों को चारों ओर से देखता है। इस प्रकार मन्त्र के शब्दों से जीवात्मा और परमात्मा का भेद स्पष्ट है।

स्वामी आत्मानन्द नामक प्रसिद्ध अद्वैतवादी विद्वान् ने भी 'अस्यवामीय सूक्त' (ऋ० १।१६४) की व्याख्या करते हुए इसी जीवात्म-परमात्म-भेद परक अर्थ को स्वीकार किया है यद्यपि 'अविद्यासिद्धं जीवम् अनूद्य' इत्यादि शब्द उन्होंने अपनी ओर से जोड़ लिये जो अप्रामाणिक है। मन्त्र का भाष्य करते हुए वे लिखते हैं:—

"अतो ब्रह्मविद्यैवाश्रयणीया । सा चाविद्यासिद्धं जीवमनूद्य तत्पदार्थप्रतिपादनममुमर्थमभिप्रेत्य जीवपरमात्मानावाह । द्वौ साधून् अभ्युदयनि:श्रेयस पक्षान् बिभ्रतौ जीवपरमात्मानौ (सयुजा) अन्योन्यं (सखाया) परस्परोपकारिणौ समानम् एकं (वृक्षं) व्रश्चनीयं देहं (परिषस्वजाते) परित आलिङ्ग्य तिष्ठत: । तयोर्मध्ये एकोजीव: पिप्पलफलसमं बहुदोपयुक्तमपि कर्मफलं स्वादुकृत्वा अत्ति, (अन्य:) पर: परमात्मा (अनश्नन्) अभुञ्जानोऽपि अभित: अत्यर्थं प्रकाशते । कल्पस्तुन्जीव: परश्च

प्रतिपादनीयः, जीवः परात्मेति विवक्तुकामैः । एकस्तयोः कर्मफलं तु भुंक्ते, चकाशतेऽन्योऽनशनः परात्मा ।"

(स्वा० आत्मानन्दकृत 'अस्यवामीय सूक्त भाष्य पृ० २६)

श्री सायणाचार्य ने भी शब्दार्थ लगभग उपर्युक्त प्रकार करते हुए अद्वैतवाद के पक्षपातवश निम्न टिप्पणी दे दी है जो सर्वथा अमान्य है। क्योंकि मन्त्र के शब्दों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। वे लिखते हैं—

"अयं मन्त्रः औपाधिकभेदं वास्तवाभेदं चापेक्ष्य प्रवृतः।...... अनेन वास्तवभेदोऽपि निरस्तः। न च जीवस्य वस्तुत ईश्वरत्वे कथं जीवबुद्धया संसारशोकाविति वाच्यं तयोर्मोहकृतत्वात्।......तस्माद् वस्तुत एक एव, भेदस्तु मोहकृत इति प्रसिद्धम्। अनुभवदशायां लौकिकबुद्धत्या भेदमभ्युपेत्योच्यते 'तयोरन्य' इति। तस्मादवास्तवभेदमुपजीव्य 'तयोरन्य' इत्युक्तम्।" इत्यादि।

अर्थात् इस मन्त्र में औपाधिक भेद किन्तु वस्तुतः अभेद को मानकर 'तयोः अन्यः' इत्यादि कहा है। यदि जीव वास्तव में ईश्वर है तो संसार और शोक इत्यादि क्यों दिखाई देते हैं इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यह सब मोह के कारण होता है, वास्तव में जीव ईश्वर में कोई भेद नहीं। कल्पित लौकिक भेद मानकर 'तयोरन्यः' ऐसा मन्त्र में कहा गया है।

मुण्डकोपनिषत् में उपर्युक्त वेदमन्त्र को उद्धृत करके इसकी व्याख्यारूप में जो बचन दिया गया है वह भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है—

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशम् अस्यमहिमानमिति वीतशोकः॥

मुण्डक उपनि० ३।२

अर्थात् अनादि नित्य होने से अपने समान प्रकृति-रूप-वृक्ष में फंसा हुआ जीव शरीर इन्द्रिय मन आदि पर अपने स्वामित्व को खोकर मोह अज्ञानवश शोक करने लगता है। किन्तु जब वह अपने से भिन्न (अन्यम्) (जुष्टम् ईशम्) अपने आनन्दमय प्रेमी स्वामी ईश्वर के दर्शन करता है और उसकी महिमा का चिन्तन करता है तब वह शोकरहित हो जाता है।

यहां भी जीवेश्वर भेद का स्पष्ट प्रतिपादन है यद्यपि शंकराचार्य जी आदि ने उसे अवास्तविक बताने का प्रयत्न किया है।

[२] निम्न ऋग्वेद १०।८२।६ के मन्त्र में जीवेश्वर भेद का अति स्पष्ट प्रतिपादन है—

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद् युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥

अर्थात् हे जीवो ! तुम उस परमात्मा को नहीं जानते जिसने इन सब पदार्थों को उत्पन्न किया है। वह ब्रह्म तुम जीवों से (अन्यत्) भिन्न, किन्तु साथ ही (युष्माकम् अन्तरं बभूव) तुम्हारे अन्दर विद्यमान है। तुम अज्ञानान्धकार से आवृत्त स्वार्थी तथा कपटी दम्भी होने के कारण उस सर्वव्यापक ब्रह्म को नहीं जानते ऐसा मन्त्र के उत्तरार्ध में कहा गया है। इस प्रकार परमेश्वर का जीवों से और सांसारिक पदार्थों से (जिनका) वह परमेश्वर उत्पादक है) भेद मन्त्र में स्पष्टतया निरूपित किया गया है। यही मन्त्र यजुर्वेद १७।३१ में भी पाया जाता है। बृहदारण्यकोपनिषद् के—

"य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्मात्मा शरीरम् ।
य आत्मनि तिष्ठन्नन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ।।"

इत्यादि वचन इस मन्त्र के व्याख्यान रूप प्रतीत होते हैं जिनमें कहा गया है कि जो परमात्मा आत्मा के अन्दर रहता हुआ भी आत्मा से भिन्न है, जिसको अज्ञानी-आत्मा नहीं जानता, आत्मा जिसके निवासार्थ मानो शरीर रूप है, जो आत्मा में स्थित होकर सबको वश में रखता है, हे गार्गि ! वह तुम्हारा अन्तर्यामी अविनाशी परम आत्मा है। इस मन्त्र के अर्थ में श्री सायणाचार्य, उव्वट महीधरादि अद्वैतवादी आचार्यों को जो खेंचातानी इसको जैसे तैसे करके अद्वैतवाद समर्थक बताने के लिये करनी पड़ी है उसका वर्णन लेख को लम्बा कर देगा।

[३] ऋ० ८।९६।६ का निम्न मन्त्र भी जीव, ईश्वर और प्रकृति तथा प्रकृति से उत्पन्न जगत् के भेद को स्पष्टतया प्रतिपादित करता है।

तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवरण्यस्मात् ।
इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ।।

इस मन्त्र में कहा है कि हम (तम् उ स्तवाम) उस ईश्वर की स्तुति करें (यः इमा जजान) जिसने इन सब सूर्यादिपदार्थों को बनाया है, (विश्वा जातानि अवराणि अस्मात्) ये उत्पन्न सब पदार्थ इस परमेश्वर की अपेक्षा बहुत ही हीन हैं। (इन्द्रेण) आत्मा के द्वारा हम (मित्रेण दिधिषेम) सबके सच्चे मित्र परमेश्वर का ध्यान करें, (नमोभिः गीर्भिः) नमस्कार युक्त वाणियों से (वृषभम्) सुखों के वर्षक परमात्मा के (उपविशेम) समीप बैठ जाएं—उसकी सच्ची उपासना करें। इस मन्त्र द्वारा ब्रह्म, जीव और जगत् का भेद अत्यन्त स्पष्ट है।

[४] ऋ० ८।९५।३ के निम्न मन्त्र में परमेश्वर को, जीवरूप सनातन प्रजाओं का स्वामी बताया गया है जो उनके परस्पर भेद को स्पष्ट सिद्ध करता है।

त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ।

अर्थात् हे परमेश्वर ! (त्वं हि) तू ही निश्चय से (शश्वतीनां प्रजानाम्) जीवरूप नित्य प्रजाओं का (पतिः असि) स्वामी है।

[५] निम्न सुप्रसिद्ध मन्त्र भी जीवेश्वर भेद को अत्यन्त स्पष्टतया प्रमाणित करता है जहां भगवान् से प्रार्थना की गई है कि—

इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ।।
ऋग्वेद ७।३२।२६, सामवेद म० २५९ ऐन्द्र पर्व

हे (इन्द्र) परमेश्वर (पिता पुत्रेभ्यःयथा) जिस प्रकार पिता पुत्रों को उत्तम ज्ञान प्रदान करता है इसी प्रकार तू (नः) हमें (क्रतुम् आभर) उत्तम ज्ञान और बुद्धि दे। हे (पुरुहूत) अनेक भक्तों द्वारा पुकारे गये प्रभो ! (अस्मिन् यामनि) इस संसार-मार्ग में (नः शिक्ष) तू हमें शिक्षा दे, जिससे हम (जीवाः) जीव (ज्योतिः अशीमहि) ज्ञान-ज्योति वा ज्योतिः स्वरूप तुझको प्राप्त करें।

श्री सायणाचार्य ने सामवेद संहिता म० २५९ के भाष्य में इस मन्त्र का इतना उत्तम व्याख्यान किया है कि उसे उद्धृत करना उचित और आवश्यक प्रतीत होता है।

निरुक्त के प्रमाण से इन्द्र का अर्थ परमात्मा करते हुए वे लिखते हैं—

एवंगुणविशिष्ट परमात्मन् ! त्वं (क्रतुम) कर्म स्वविषयज्ञानं वा (नः) अस्मभ्यम् (आभर) आहर, प्रयच्छेत्यर्थः, तत्र दृष्टान्तः पिता पुत्रेभ्यो यथा लोके विद्यां धनं वा प्रयच्छति तथा (नः) अस्मभ्यं विद्यां धनं वा प्रयच्छ। हे (पुरुहूत) बहुभिराहूतेन्द्र ! (यामनि) सर्वैः प्राप्तव्येऽस्मिन् प्रकृते ब्रह्मणि जीवा वयं (ज्योतिः) परं ज्योतिः (अशीमहि) सेवेमहि ।।

[श्री सायणाचार्यकृत साम्रवेद संहिताभाष्य जीवानन्द वि० सा० सम्पादित कलकत्ता पृ० १३७]

माधव ने अपने सामवेद भाष्य में भी—

त्वद्दत्तया च प्रज्ञया जीवाः—जीवन्तो वयं (ज्योतिः) ज्ञानम् (अशीमहि) प्राप्नुयामेत्यर्थः [सामवेद संहिता सभाष्या ऐड्रयार पृ० १९०]

इस प्रकार लगभग उसी आशय का भाष्य किया है। मन्त्र के शब्द इतने अधिक स्पष्ट हैं और उनसे जीवों का परमेश्वर से भेद इतना अधिक व्यक्त है कि उससे कोई विद्वान् इन्कार कर ही नहीं सकता।

[६] ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतं॑ स्मर।

यजु० अ० ४० का यह मन्त्र भी (जो ईशोपनिषत् में ज्यों का त्यों पाया जाता है) इस प्रसङ्ग में उल्लेखनीय है जहां स्पष्ट कहा है कि हे (क्रतो) कर्मशील जीव ! तू (ओ३म् स्मर) ओं पदवाच्य सर्वरक्षक परमेश्वर का स्मरण कर, (क्लिबे स्मर) शक्ति की प्राप्ति के लिये परमेश्वर का स्मरण कर और (कृतंस्मर) अपने किये हुए को याद कर—आत्मनिरीक्षण कर। यहां भी जीवेश्वर भेद का स्पष्ट प्रतिपादन है। ऐसे ही—

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥
यजु० ११।४

यो नो दाता स नः पिता महां उग्र ईशानकृत्। ऋ० ८।५२।५

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः।
य ईशे महतो महान् तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम्॥
यजु० २०।३२

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषम्। यजु० ३२।१४

इत्यादि हजारों मन्त्रों को जीवेश्वर भेद दिखाने के लिये उद्धृत किया जा सकता है। किन्तु लेख का कलेवर पहले ही बहुत अधिक बढ़ गया है अतः उस विचार को किसी और अवसर के लिये छोड़ते हुए मैं इस लेख को यहीं समाप्त करता हूं। सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान् एक परमेश्वर की उपासना और उसकी आज्ञानुसार शुभकर्म करने से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता हैं अन्यथा नहीं इस बात को हमें कभी न भूलना चाहिये। वार्ल्स कोल्मैन, श्रीलगल, अर्नेस्ट वुड् ब्राऊन्, कौन्ट ब्जौन्सजर्ना इत्यादि पाश्चात्य विद्वानों, दादाचानू जी इत्यादि पारसी, और सर् यामिन खां आदि मुसलमान विद्वानों ने वेदों में एकेश्वरवाद का किस प्रकार प्रतिपादन किया है यह विषय भी पृथक लेख का विषय है।

# सबसे अधिक सुखी और धनी कौन है?

इस संसार में मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र, सबसे बड़ा सलाहकार तथा सबसे बड़ा शिक्षक पुस्तक ही है। पुस्तकों के संकलन से बड़ा कोई विद्यालय नहीं हैं। अगर यदि कुछ है तो वह पुस्तक ही हो सकती है। वाल्टेयर के कथनानुसार, सारे संसार के देशों पर वास्तविक शासन पुस्तकों का ही है।

जहां तक आराम, चैन और आनन्द का सम्बन्ध है, दुनियां में यदि किसी समय मिल सकता है, तो सिर्फ उन्हीं क्षणों में जब कि हम एकाग्र होकर पुस्तकें पढ़ रहे होते हैं। अतः मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि पुस्तक प्रमी सबसे अधिक अमीर भी हैं। उनकी अमीरी की तुलना में संसार का बड़े से बड़ा धनपति भी कंगाल है। इसी अनुभव के आधार पर थोरो जैसे विचारक ने यहां तक कह डाला कि पुराना कोट पहनो और नई पुस्तक खरीदो।

इसीलिए विश्व के महान व्यक्ति सदा अपने को पुस्तकों की सम्पदा से ही मालामाल करते रहे हैं और अपनी आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने पुस्तकों का साथ कभी नहीं छोड़ा।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

# गायत्री मन्त्र का ऐतिहासिक अध्ययन

## — संहिता से गृह्यसूत्रों तक—

**—श्री कृष्णलाल एम० ए०—**

□ □ □

गायत्री भारत की आत्मा है। इसका दुरुपयोग भी हुआ।
आज आवश्यकता है कि इसकी भावना को
प्रत्येक मनुष्य हृदयंगम कर ज्योतिर्मय बने।

o o o o

प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र (ऋ० वे० ३. ६२. ५०) वैदिक साहित्य का एक बहुमूल्य रत्न है। कोई भी सच्चा भारतीय ऐसा न होगा जिसे गायत्री मन्त्र स्मरण न हो—बाल-वृद्ध-युवती, सब ही इसका उच्चारण करने में समर्थ हैं। सन्ध्या या ईश-वन्दना के लिये अधिक नहीं तो केवल यह मन्त्र ही पर्याप्त है।

इसकी इस सर्वतोमुखी ख्याति का क्या कारण है? ऋग्वेद तो इस प्रकार की अनेक सूक्तियों से परिपूर्ण है—फिर ऐसी क्या बात है कि सहस्रों मन्त्रों में से केवल यह एक सावित्री ऋचा ही इतनी लोकप्रिय हो गई? ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी यह प्रसिद्धि बहुत प्राचीनकाल से चली आ रही है और इसकी पृष्ठभूमि में महत्त्वपूर्ण वैदिक कर्मकाण्ड का इतिहास निहित है।

इस मन्त्र के अर्थ के विषय में प्राचीन, अर्वाचीन, भारतीय या पाश्चात्य विद्वानों में कोई विशेष विप्रतिपत्ति नहीं है। अतः यहां केवल भावार्थ दिया जाता है:—

"हम सारे जगत् के उत्पादक उस परमैश्वर्यवान् दीप्तिमान् ईश्वर [सविता देव] के सर्वोत्कृष्ट पापनाशक कान्तियुक्त रूप को धारण करते हैं [या, उसका ध्यान करते हैं] जो हमारी बुद्धियों को भले कामों में प्रेरित करे।"

[सामवेद सातवलेकर १४६२ में भी यह मन्त्र विद्यमान है]

यहां उपासक ईश्वर से [या सूर्यरूप सविता नामक उसकी शक्ति से] प्रार्थना करता है कि वह उसकी बुद्धि को प्रेरित करे अर्थात् प्रकाशित करे। इस मन्त्र के द्रष्टा महर्षि विश्वामित्र हैं। वास्तव में मनुष्य के पास बुद्धि ही तो ईश्वर की एक सर्वोत्कृष्ट देन है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य अपनी बुद्धि के विकास का प्रयत्न करता ही है। और

इसीलिये इस मन्त्र का प्रयोग किसी भी स्थान पर, किसी भी यज्ञ में, किसी भी समय किया जाय, यह इतना स्थल विरुद्ध नहीं होगा। मन्त्र के अर्थ से यह स्पष्ट ही है कि अपने मूल-स्रोत ऋग्वेद में यह किसी विशेष यज्ञादि में विनियोग के निमित्त नहीं रहा होगा। स्वामी दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेद-भाष्य से भी यही बात स्पष्ट होती है। वाजसनेयी संहिता [३.३५] में भी इस मन्त्र की भूमिका के रूप में उन्होंने लिखा है—"तस्य जगदीश्वरस्य कीदृश्य स्तुतिप्रार्थनोपासना: कार्या इत्युपदिश्यते।"—अर्थात् उस जगदीश्वर की किस प्रकार की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये, इस विषय में उपदेश किया गया है।

परन्तु सायणादि अन्य भाष्यकारों ने किसी न किसी यज्ञ में इसका विनियोग दिखाया है। उनकी इस व्याख्या का आधार बाद के ब्राह्मणग्रन्थ, श्रौतसूत्र आदि ही हैं। वा०सं०३.३५में अग्निहोत्र यज्ञ में अन्य इन्द्रादि देवों के साथ-साथ सविता की स्तुति कही गई है वा० सं० १२,६ में सावित्री इष्टि के याज्यानुवाक्या मन्त्रों में यह मन्त्र सर्वप्रथम है। इससे पूर्व अश्वमेध यज्ञ में अश्व की विविधि क्रियाओं के प्रति आहुतियां देने के लिये मन्त्र दिये गये हैं। यह स्मरणीय बात है कि प्रसिद्ध राष्ट्रिय गीत "आ ब्रह्मन्" इत्यादि इसी अध्याय का २२वां मन्त्र है। यह इस सारे अध्याय की राष्ट्र समृद्धि की प्रार्थना विषयकता का परिचायक है। वा० सं० ३०२ में पुरुषमेध प्रकरण में सर्वप्रथम सविता की स्तुति में इस मन्त्र का प्रयोग है। और वा० सं० ३६.३ में शान्ति प्रकरण में साधारण सुख समृद्धि की प्रार्थना में अन्य मन्त्रों के साथ इसका भी विनियोग है। अब निश्चित रूप से यह कह सकना तो सम्भव नहीं कि वस्तुत: ही यजुर्वेद में उक्त कर्मों में ही सावित्री का प्रयोग अभिप्रेत था या नहीं, क्योंकि यजुर्वेद तो केवल मन्त्रों की संहिता है। उसमें मन्त्रों के विनियोग का विधान नहीं किया गया है। परन्तु फिर भी कई मन्त्रों से उनके यज्ञ-प्रयोग का प्रयोजन स्पष्ट होता है। अतः सम्भव है कि अन्य मन्त्रों का भी यज्ञों में प्रयोग होता हो। ब्राह्मणों और श्रौतसूत्रों में मन्त्र-प्रयोग के बारे में भी दोनों ही पक्ष प्रबल हैं। यह भी सम्भव है कि वैदिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिये और मन्त्रोच्चारण को अधिक महत्त्व देने के लिये उन यज्ञों में मन्त्रों का विनियोग हो। [यहां यह पूर्व-कल्पना करनी पड़ेगी कि ब्राह्मण-काल से पूर्व या तो यज्ञों में इन मन्त्रों का प्रयोग होता ही नहीं था, या उस समय ये यज्ञ-विशेष ही नहीं थे।] और दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि सूत्रों ने वेदों के यज्ञ-यागादि की परम्परा का अनुसरण करते हुए उन ही मन्त्रों का परम्परागत-यज्ञों में विधान किया हो। वर्तमान अनुसन्धान के फलस्वरूप न तो हम यह कह सकते हैं कि सारे संहिता-मन्त्र यागनिमित्त थे, और न ही यह कि एक भी मन्त्र यागनिमित्त नहीं था।

सायण भाष्य में भी एक बात महत्वपूर्ण है। वह यह कि यज्ञों में विनियोग होते हुए भी उसका उच्चारण यज्ञ में आहुति के साथ नहीं विहित है, अपितु केवल प्रार्थना के रूप में।

तै० सं० १.५.६.४. में इसका प्रयोग आहवनीयाग्नि के उपस्थान में किया गया है। ५.१.१.१.१. में अष्टकपाल में सवितृदेव को आहुति देने के लिए इस मन्त्र का

विनियोग है। परन्तु इस स्थान में इसका प्रयोग अर्थ-संगत नहीं प्रतीत होता। यह तो एक स्वतन्त्र प्रार्थना है। ऐसा प्रतीत होता है कि तैत्तिरीय संहिता के इसी प्रकार के अन्य कई प्रयोगों ने पश्चात् के सूत्रों आदि को भी इस प्रकार के प्रयोग करने का प्रोत्साहन दिया।

मै० सं० ४.१०.३. १४६, १४, १५ में इसका प्रयोग याज्यानुवाक्या में किया गया है। इस मन्त्र से पूर्व सोम की स्तुति है और पश्चात् सविता की है, जिसमें मनुष्यता के कारण किये गये प्रमाद को क्षमा करने के लिये सविता से प्रार्थना कही गई है।

संहिताओं के इन सब प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि इस काल तक गायत्री मन्त्र को ऐसा कोई विशेष नाम नहीं दिया था; और यह कि इस मन्त्र को सवितृ-देव के अन्य मन्त्रों के साथ साधारण रूपसे गिना जाता था। इसे अभी कोई सर्वातीत वैशिष्टय नहीं प्राप्त हुआ था। संहिता से आगे चलने से पहले एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि अथर्ववेद संहिता में इस मन्त्र को उद्धृत नहीं किया गया है। श्री सी० वी० वैद्य ने भी अपनी History of Sanskrit Literature, Vol. I· (पृष्ठ १६४) में इसी ओर ध्यान आकृष्ट किया है—'The Gayatri of Viswamitra is strangely enough not to be found in the Atharvaveda." परन्तु यह मन्त्र अथर्ववेद में क्यों नहीं है—इस विषय में युक्ति-युक्त ढंग से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

विनायक महादेव आप्टे "Rigveda Mantras in their Ritual Setting in the Grhyasutras" पृष्ठ २१ में लिखते हैं—"Among early Vedic texts, T.S., A B., and K.B. know of this verse only as one of the many verses sacred to Savitr and do not attach special importance to it as the Savitr par excellence which seems to be a later development."

ब्राह्मणों में सर्वप्रथम ऐतरेय ब्रा० ४३२. २; ५.५.६; १३.८; और १६.८ स्थलों पर क्रमशः द्वादशाह सूत्र के दूसरे, चौथे, षष्ठे, आठवें दिन के सायमभिषेक में प्रयुक्त वैश्वदेव शस्त्र की प्रतिपदृचा के रूप में इसका विनियोग है।

शतपथ ब्रा० २.३.४.३६. में अग्न्युपस्थान में इस मन्त्र का प्रयोग विहित है। सावित्री की महिमा बताने के लिये कहा है—"सविता वै देवानां प्रसविता, तथाह्यस्मा एते सवितृप्रसूता एव सर्वे कामा समृध्यन्ते।"—सविता देवों का उत्पादक है, इसीलिए इस [मनुष्य] में सविता द्वारा उत्पादित सब अभिलाषाएं फलती फूलती हैं अर्थात् सविता ही परमेश्वर है और वही सब कामनाओं की पूर्ति करता है। शतपथ ब्राह्मण की इस व्याख्या से यह स्पष्ट है कि गायत्री मन्त्र को उस काल में पर्याप्त महत्त्व प्राप्त हो गया था।

श० ब्रा० १३.६.२.६ में पुरुषमेध के कुछ व्याख्या के पश्चात् विधान है कि पशुओं को हटाते हुए इन तीन सावित्री ऋचाओं से आहुति देना है। "देव सवितः"

इत्यादि। इनमें दूसरी ऋचा ही प्रस्तुत गायत्री है। इस प्रयोग से प्रकट है कि शतपथ ब्राह्मण काल में इस मन्त्र को "सावित्री ऋक्" के नाम से पुकारा जाने लगा था, यद्यपि इसके साथ अन्य दो को भी सावित्री कहा गया है। सम्भव है कि इसी प्रयोग के आधार पर आगे चलकर गृह्यसूत्रों में इसी मन्त्र को प्रधान-रूप से सावित्री ऋक् कहा गया हो। परन्तु यह कोई इतना निश्चायक प्रमाण नहीं है।

श० ब्रा० १४.९.३.११-१३ में, जो व्यक्ति महान् होने का इच्छुक हो, उसके लिये श्रीमन्थकर्म का विधान है। कुछ औषधिफल आदि को पीसकर एक मन्थ तैयार किया जाता है, और फिर आहुतियों के अनन्तर उसका भक्षण किया जाता है। भक्षण के समय प्रथम, द्वितीय और तृतीय ग्रास के साथ क्रमशः गयात्री के तीनों पादों का पाठ करना होता है, और प्रत्येक पाद के साथ क्रमशः एक एक महाव्याहृति और एक एक मधुमती ऋचा का भी पाठ होता है। पृथक् पृथक् पाद के प्रयोग के कारण यहां पर इस मन्त्र का प्रयोग गृह्यसूत्रों के प्रयोग के बहुत निकट है। यह प्रयोग अर्थानुकूल भी प्रतीत होता है। क्योंकि महान् होने के लिये वस्तुतः ही "धीः" [बुद्धि] की अत्यन्त अपेक्षा रहती है। [बृहदारण्यकोपनिषद् ६.३.६ भी यही सन्दर्भ है।]

इस प्रकार शतपथ ब्रा० में गायत्री की भावी विख्याति और गृह्यसूत्रों में उसके प्रयोग का बीजारोपण हो चुका था। परन्तु इसमें भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श० ब्रा० ११.५.४.६ में तो इस मन्त्र का प्रयोग उपनयन संस्कार में किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि गृह्यसूत्रों की परम्परा ने [जहां गायत्री का प्रयोग प्रधानतया उपनयन संस्कार में है] इस मन्त्र को शतपथ ब्राह्मण के इसी स्थल से ज्यों का त्यों अपना लिया है। श० बा० ११.५.४.६.१५ में गायत्री अध्यापन का ढंग भी वही गृह्यसूत्रों के समान है—"अथास्मै सावित्रीमन्वाह तां वै पच्छो न्वाह। त्रयो वै प्राणाः प्राण-उदानो-व्यानस्तानेवास्मिंस्तद्दधाति, अथार्धर्चशो द्वौ वा इमौ प्राणौ प्राणोदानावेव, प्राणोदानावेवास्मिस्तद्दधाति, अथ कृत्स्नामेको वा अयं प्राणः कृत्स्न एव, प्राणमेवास्मिस्तत् कृत्स्नं दधाति।"

गोपथ ब्राह्मण १.१.३४—३६ में सावित्री का किसी यज्ञ कर्मादि में विनियोग नहीं है। वहां केवल उसकी आधिदैविक व्याख्या कही गई है। मन्त्र की विख्याति के सम्बन्ध में यह स्थल भी महत्त्वपूर्ण है। यहां यह बताया है कि किस प्रकार सविता ने क्रमशः सावित्री के तीनों पादों की उपलब्धि के लिये पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ को ऋक् यजुः और साम से मिलाया* और फिर किस प्रकार प्रजा, कर्म, तप, सत्य, ब्रह्म और फिर ब्राह्मण की सृष्टि हुई, किस प्रकार व्रतों से ब्राह्मण का जीवन परिपूर्ण होता है इत्यादि। सारांश यह कि गोपथ ब्राह्मण में तो यह मन्त्र शतपथ से भी अधिक उच्च

---

* यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि अथर्ववेदीय ब्राह्मण होते हुए भी इस ब्राह्मण में यह अथर्ववेद का उल्लेख नहीं है। सम्भव है कि रचयिता इस बात से अभिज्ञ हो कि आथर्वण संहिता में यह मन्त्र नहीं है। यद्यपि कौशिक सूत्र ने अन्य गृह्यसूत्रों की भांति इस मन्त्र का प्रयोग किया ही है।

स्थान को प्राप्त हो चुका था। यद्यपि यहां गायत्री के अर्थ को स्पष्ट नहीं किया गया, तथापि उसे सृष्टि कार्य में सहायक मानकर और उसे ब्राह्मण के जीवन का आधार मानकर उसके महत्त्व को बहुत ऊंचा उठा दिया है।

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ४.२८.२ में भी यद्यपि इस मन्त्र की आधिदैविक व्याख्या कही गई है, तथापि गृह्यसूत्रों में प्रयोग की दृष्टि से इसका बहुत महत्त्व है; क्योंकि जिस प्रकार सावित्री के शिक्षण में गृह्यसूत्रों में पहले एक एक पाद, फिर ऋचा के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध को और अन्त में सम्पूर्ण गायत्री को उच्चारित करते हैं [पच्छोऽर्धर्चशः सर्वामन्ततः] उसी प्रकार यहां भी पहले एक एक पाद का पृथक्-पृथक् भाव दिया गया है, फिर आधी-आधी ऋचा का और अन्त में सम्पूर्ण ऋचा का। संक्षेप में, अग्नि, आपः और चन्द्रमा को वरेण्य बताया है। अग्नि, आदित्य और चन्द्रमा को भर्ग बताया है और यज्ञ को प्रचोदयिता। लिखा है कि यज्ञ प्रचोदित अर्थात् प्रेरित करता है और स्त्री और पुरुष सन्तानोत्पत्ति करते हैं—"यज्ञो वै प्रचोदयति। स्त्री च वै पुरुषश्च प्रजनयतः"। सावित्री का महत्त्व इस प्रकार बताया है—"यो वा एनां सावित्रीमेवं वेदाऽप पुनर्मृत्युं तरति सावित्र्या एव सलोकतां जयति।"—जो इस प्रकार से इस सावित्री को जानता है, वह मृत्यु को पार कर जाता है अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता हैं, और सावित्री की ही सलोकता को प्राप्त होता है।

तैत्तिरीयारण्यक का दशम प्रपाठक नारायणोपनिषद् है। इसके २७वें अनुवाक के प्रथम मन्त्र में प्राणायाम के निमित्त गायत्री का प्रयोग बताया गया है। इस प्रयोग से, और ऐसे ही अन्य प्रयोगों से गायत्री का आध्यात्मिक महत्व भी प्रतिष्ठित हो गया होगा।

श्रौतसूत्रों में इस मन्त्र का विनियोग प्रायः अग्निहोत्र के पश्चात् आहवनीयाग्नि के उपस्थान में हुआ है यथा शां० श्रौ० २.१२.७; आप० श्रौ० ६.१८.१ और वैखानस श्रौ० २.८ में। शां० श्रौ० २.१०.२ में अग्निहोत्र कर्म में अन्वाहार्य पचन में सावित्री का विनियोग है। यहां सावित्री का उच्चारण आहुति के साथ किया जाता है। ५.५.२ में सोमयज्ञ में सावित्री का पुरोऽनुवाक्या के रूप में विनियोग है। १०.६.१७ और ६.१६ में क्रमशः गवामयन में पांचवें दिन और सातवें दिन में गायत्री के उच्चारण का विधान है। आप० श्रौ० २०.२४.६ में यह मन्त्र पुरुषमेध के प्रारम्भिक विषय में प्रयुक्त हुआ है।

श्रौतसूत्रों के प्रयोग से स्पष्ट है कि उनमें भी सावित्री को अत्यधिक विशिष्ट पद प्राप्त नहीं था। ब्राह्मणों और श्रौतसूत्रों के अध्ययन से पता चलता है कि किस प्रकार कालात्यय के साथ-साथ सावित्री का क्षेत्र अधिकाधिक वैदिक यज्ञों में फैलता जा रहा था, किस प्रकार इसके सर्वकालोचित अर्थ के कारण इसका क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा था। यही अवस्था आज के हिन्दू धर्म में भी सावित्री की है। किसी भी सम्प्रदाय का अनुयायी किसी भी अवसर पर इसका प्रयोग कर सकता है। बहुत कर्मकाण्डियों का तो यह भी मत है कि किसी कर्म में यदि कोई और मन्त्र स्मरण न रहे तो वहां गायत्री का प्रयोग करना चाहिये। यही नहीं, तन्त्रों में तो इसी मन्त्र का

अनुकरण करके कई नये मन्त्रों का सर्जन भी किया गया है। यथा:—भैरवी की गायत्री:—

"त्रिपुरायै विद्महे भैरव्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् ।"

ऐसा प्रतीत होता है कि गायत्री के इस विस्तृत क्षत्र और प्रतिष्ठा के प्रभाव से ही प्रत्येक वेद की प्रत्येक शाखा के गृह्यसूत्रों ने इस मन्त्र को ग्रहण किया है। परन्तु उपनयन संस्कार में जिस ढंग से इसका प्रयोग हुआ है वह केवल और केवल मात्र शतपथ ब्राह्मण के आधार पर ही है। इसके प्रशिक्षण की विधि [पच्छोऽर्धर्चशः सर्वा-मन्ततः] भी श० ब्रा० ११.५.४.६,१५ पर ही आश्रित प्रतीत होती है।

गृह्यसूत्रों में गायत्री का प्रयोग बहुत ही संगत है—इधर अर्थ की दृष्टि से और उधर संस्कार की दृष्टि से उपनयन संस्कार ही इस मन्त्र के लिये उपयुक्ततम संस्कार है। इस समय बालक, विद्यार्थी के नये जीवन में, प्रवेश कर रहा है—उस जीवन में उसे अधिक से अधिक विद्या, बल, शौर्य, ब्रह्मचर्य और शिष्टाचार का उपार्जन करना है। आचार्य शिष्य द्वारा सावित्री का धीरे-धीरे [पादादि क्रम से] उच्चारण कराता है जिससे शिष्य अपने कर्तव्य में सावधान हो जाय, उस ईश्वर के ध्यान में आसक्त होकर सारे कार्य करे जो उसे बुद्धि-बल दे, उसमें एक आत्मविश्वास पैदा हो जाय।

परन्तु गृह्यसूत्रों ने जहां इस मन्त्र का अर्थ समझकर इसका सदुपयोग किया है, वहां कुछ ऐसा भी आभास होता है कि वे इसके अर्थ को भूलने लगे थे। विविध वर्ण-जाति के कृत्रिम विभाग में फंसकर वे इस अनर्घ सम्पत्ति का मूल्य घटा रहे थे। क्योंकि सामान्यतः आठ वर्ष के ब्राह्मण, ग्यारह वर्ष के क्षत्रिय, और बारह वर्ष के वैश्य का उपनयन होता था, अतः ब्राह्मण के लिये प्रतिपाद ८ मात्राओं वाली गायत्री-छन्द की सावित्री-ऋक् का विधान है, क्षत्रिय के लिये ११ मात्राओं वाली त्रिष्टुभ् छन्द की सावित्री का, [सावित्री से तात्पर्य है, वह मन्त्र जिसका देवता सविता हो] और वैश्य के लिये १२ मात्राओं वाली जगती छन्द की सावित्री ऋचा का। यथा देखिये पारस्कर गृह्य० २.३.७.१० "सद्यस्त्वेव गायत्री ब्राह्मणायानुब्रूयादाग्नेयो वै ब्राह्मण इति श्रुतेः। त्रिष्टुभं राजन्यस्य। जगतीं वैश्यस्य। सर्वेषां वा गायत्रीम्।" इससे तो यही प्रतीत होता है कि उपनयन की दृष्टि से पश्चात् के गृह्यसूत्रकारों ने इस 'सावित्री' के अर्थ की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उनका लक्ष्य सम्भवतः केवल मन्त्रों का रटना ही हो गया था, उनका अर्थ समझना नहीं। यास्क के समय में ही यह प्रवृत्ति आरम्भ हो गई थी। [नि० १.६.२०]

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि गृह्यसूत्र-काल के भारतीय समाज में सावित्री का महत्त्व अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। ब्रह्मचर्य जीवन में जहां आचार्य शिष्य का पिता था, वहा गायत्री उसकी माता थी। समाज में रहने मात्र के लिये प्रत्येक मनुष्य को सावित्री का ज्ञान होना अनिवार्य था। इसके बिना कोई भी शिष्ट नहीं माना जाता था। और उसमें भी यह कि उसके अध्ययन का समय सीमित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को क्रमशः अधिकाधिक १६, २२ और २४ वर्ष तक ही उपनयन

संस्कार अर्थात् सावित्री अध्ययन में प्रवेश का अधिकार प्राप्त था।

यदि इस अवधि में कोई उपनीत न हो जाय तो इसके पश्चात् वह पतित-सावित्रीक हो जाता था, अर्थात् सावित्री अध्ययन के अधिकार से च्युत हो जाता था। ऐसी अवस्था में उनका समाज से बहिष्कार कर दिया जाता था; क्योंकि वह अशिक्षित और अशिष्ट होता था। यह विधान है कि न तो कोई ऐसे व्यक्तियों का उपनयन संस्कार करे, न कोई इन्हें पढ़ाये, न कोई इनका यज्ञ करावे और न ही कोई इनके साथ व्यवहार करे, अर्थात् इनके साथ न उठे बैठे, न खाये पिये, न बात करे, नहीं कोई विवाहादि सम्बन्ध स्थापित करे। देखिये पारस्कर० २.५.३६, ४०—"अतः ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति। नैनानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्न चैभिर्व्यवहरेयुः।"

गृह्य सूत्रों में अधो निर्दिष्ट स्थलों पर उपनयन संस्कार में गायत्री का विनियोग है :—

| | |
|---|---|
| १. शांखायन २.५.१२; ७.१६ | २. आश्वलायन १.२१.४,५ |
| ३. कौशिकसूत्र ५६.८-११ | ३. आपस्तम्ब ४.११.६ |
| ५. हिरण्यकेशि १.६.११; ६.६; १.५.८ | ६. वाराह् ५.४३ (क) |
| ७. काठक ४१.२० | ८. पारस्कर २.३.३ |
| ९. वैखानसस्मृति० २.४ [पृष्ठ २३-२४] W. caland द्वारा सम्पादित] | १०. खादिर २.४.२१ |
| | ११. गोभिल २.१०.३५ |

१२. कौथुक (सूर्यकान्त सम्पादित, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता १९५६) १६.२६ पृष्ठ

१३. मानव १.२.३—विचित्र बात है कि इस गृह्यसूत्र में 'पच्छोऽर्धर्चशः सर्वाम्' का निर्देश नहीं है।

कुछ गृह्यसूत्रों में उपनयन के साथ-साथ गायत्री का प्रयोग अन्य स्थलों पर भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि समय बीतते २ पश्चात् के गृह्यसूत्रों में गायत्री के ये 'अन्य स्थल' अधिकाधिक होते जा रहे थे। वैखानस० १.१२ में आघाराहुति के समय और ४.४ में अष्टका में इसका प्रयोग है। कौशिकसूत्र ९१.६ में मधुपर्क-भक्षण के समय गायत्री का उच्चारण होता है। मानव० ४.८ और ५.२ में इसका विनियोग उत्सर्ग और तर्पण में होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं गायत्री के आधुनिक विविध प्रयोगों की आधार शिला इन गृह्यसूत्रों में रखी जा चुकी थी।

**संक्षिप्त सार**—संहिता काल में इस मन्त्र की बहुत अधिक प्रतिष्ठा नहीं थी। इसका स्थान अन्य मन्त्रों के समान ही था। ब्राह्मणों और श्रौत-सूत्रों में इसका प्रयोग अधिकतर विभिन्न यज्ञों में मिलता है। यह इतना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। शतपथ ब्राह्मण में सर्वप्रथम उपनयन संस्कार में इसका प्रयोग है। इसी का अनुसरण सम्भवतः गृह्यसूत्रों ने किया है। यह प्रयोग शत-प्रतिशत अर्थ संगत है। गृह्यसूत्रों में सामाजिक दृष्टिकोण से इसका महत्त्व पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। गृह्यसूत्रों में 'सावित्री' या 'गायत्री' नाम से प्रधानतया इसी मन्त्र से अभिप्राय होता था।

# वेद महिमा

□ □ □

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।। (ऋग्वेद)

उस सर्वहुत यज्ञस्वरूप परमेश्वर से ऋग्वेद और सामवेद उत्पन्न हुए । उसी से छन्द (अथर्व) और यजुर्वेद उत्पन्न हुए ।

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति । (अथर्ववेद)

भगवान के काव्य (वेद) को देखो । न वह मरता है और न जीर्ण होता है ।

प्रजापतिर्वा इमान् वेदानसृजत् । (ऐतरेय ब्रा०)

इन वेदों का प्रजापति ने सृजन किया ।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् । (मनु०)

वेद सब धर्मों का मूल है ।

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा ।
आदौ वेदमयी नित्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ।। (महाभारत)

संसार के आरम्भ में स्वयम्भू भगवान ने अनादि और शाश्वत वेदवाणी की सृष्टि की, जो सभी प्रवृतियों का स्रोत है ।

स ऋङ्मयस्सामममयः सर्वात्मा स यजुर्मयः । (विष्णु पुराण)

वह सर्वात्मस्वरूप परमात्मा ही ऋक्, साम और यजुर्मय है ।

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः । (श्रीमद्भागवत)

पहले एक सर्ववाड्.मय प्रणव-वेद का ही आविर्भाव हुआ ।

ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता पुरा । (श्रीमद्भगवद्गीता)

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा से ब्राह्मणों, वेदों और यज्ञों की सृष्टि की गई ।

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् । (सांख्य दर्शन)

निज शक्ति द्वारा अभिव्यक्त होने के कारण वेद स्वतः प्रमाण है ।

शास्त्रयोनित्वात् अत एव च नित्यत्वम् । (वेदान्त दर्शन)

वेद सभी शास्त्रों के उत्पत्ति-स्थान हैं, इसी लिए वह सत्य हैं ।

नित्यस्तु स्याद् दर्शनस्य परार्थत्वात् । (पूर्वमीमांसा)

वेद नित्य है क्योंकि उनकी उत्पत्ति दूसरों के लिए हुई है ।

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् । (वैशेषिक दर्शन)

ईश्वरोक्त होने के कारण वेद नित्य व प्रामाणिक है ।

महतः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनि कारणं ब्रह्मा । (शंकराचार्य)

दीपक के समान अनेक विद्याओं के उत्पत्ति स्थान, सभी अर्थों के द्योतक, सर्वज्ञ के तुल्य महान् ऋग्वेदादि शास्त्रों का उत्पादक ब्रह्म है ।

विद्वां च वेदेहि समेच्च धम्मं न उच्चावचं गच्छति भूरि पंत्रो ।
(भगवान् बुद्ध)

भूरिप्रज्ञ विद्वान् वेदों के द्वारा धर्म को प्राप्त करके अस्थिरता को प्राप्त नहीं होता ।

वन्दऊं चारिउ वेद भव वारिधि बोहित सरित । (तुलसीदास)

वेद कतेब कहहु जानि भूठा । भूठा जो न विचारे । (कबीर)

ओंकार वेद निरमाये । (गुरु नानक)

ओंकार उत्पाती । चार वेद चारखाणी । (गुरु अर्जुनदेव)

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है । (महर्षि दयानन्द)

वेद में वैज्ञानिक सत्य और धार्मिक सत्य के साथ अन्य वैज्ञानिक सत्य भी हैं । जिसका अभी तक आधुनिक विज्ञान को भी ज्ञान नहीं ।
(श्री अरविन्द)

वेद शाश्वत है । अतः वेद स्वतःप्रमाण है । (श्री राधाकृष्णन)

वेद ईश्वरीय ज्ञान है । प्रत्येक मन्दिर में वेद-पारायण होना चाहिये । (महाम० स्वामी गंगेश्वरानन्द)

अन्य समस्त दिव्य ग्रन्थों से बहुत पहले परमात्मा ने अपने दिव्य ज्ञान के चारों ग्रन्थ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ब्रह्मा आदि ऋषियों के माध्यम से आविर्भूत कर दिये थे । (दारा शिकोह)

संसार में सर्वोत्तम सार वेदों को मज़्दा परमात्मा ने हचा ऋत् से संयुक्त करके मानवों को प्रदान किया । (श्री जरथुस्थ)

भारत में परमात्मा ने चारों वेदों का ऋषियों पर प्रकाश किया ।
(लावी-अरब कवि)

वेद शाश्वत हैं और इस लिये पूर्ण तथा निर्दोष हैं । (मैक्समूलर)

वद शाश्वत है, और किसी भी मानवीय कार्य-करण परम्परा से सम्बद्ध नहीं हैं। वह पूरे विश्व के विधाता ब्रह्मा द्वारा आविभूर्त हुए हैं। (शोपनआवर)

वेद की शिक्षायें इतनी उन्नत हैं कि उनका परिचय टूटे-फूटे अथवा संदिग्ध अनुवाद से प्राप्त करना अपराध है। (बाऊलंगर)

यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥ (मनुस्मृति)

मानव के जिस किसी रूप का कर्त्तव्य मनु जी ने वर्णन किया है, वह सब वेद में विद्यमान है, क्योंकि वेद सर्व ज्ञान से परिपूर्ण है।

यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा॥ यजु० ३।४५॥

सामाजिक जीवन में समाज के नियमों का भंग कर हमने जो समाज के प्रति पाप किया है, अरण्य में जाकर आरण्य पशुओं को सता कर हमने जो पशुजगत् के प्रति पाप किया है, या अरण्यवासी होकर हमने जो वानप्रस्थ के नियमों को भंग किया है, सभा अर्थात् विधानसभाओं में जाकर हमने जो सभाओं के नियमों का भंग किया है, अपनी इन्द्रियों का दुरुपयोग कर हमने जो अपने प्रति पाप किया है—उस सबका हम मिलकर-तथा-व्यक्तिरूप में प्रायश्चित्त करते हैं, और सामाजिक जीवन, सर्वभूत मैत्री, वानप्रस्थ जीवन, सभाजीवन तथा वैयक्तिक जीवन को यज्ञ समझकर हम इन यज्ञों का भंग न करेंगे। इन यज्ञों को पूर्ण करने के लिये हम उत्तम प्रकार से पूर्ण त्याग करेंगे।

# दयालु हंस और घमंडी कौवा

—जगदीश प्रसाद पाठक—

□ □ □

किसी समुद्र के किनारे पर्वत की तलहटी में कौओं की एक घनी बस्ती थी। बहुत से कौए वहां रहा करते थे। उनका एक मुखिया था जिसका नाम उल्का था। वह काफी चालाक था और आसपास की मानव बस्तियों की जूठन,आदि खा-पीकर खूब हृष्ट-पुष्ट हो गया था। वह काफी बातूनी और घमंडी हो गया था जिससे अपनी बिरादरी में श्रेष्ठ माना जाने लगा था। इतना ही नहीं, अपने घमंडी स्वभावके कारण अपने विजातीय श्रेष्ठ पक्षियों का भी वह अपमान करने लगा था। आस-पास के पक्षी उससे काफी परेशान हो गये थे। वे ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे कि उसके घमंड का फल उसे मिले और उसका अंत हो। उल्का कौए का आतंक बढ़ा ही जा रहा था।

एक दिन उसी समुद्र-तटपर मानसरोवर में मोती चुगने वाले हंस उतरे और इधर-उधर घूमकर विहार करने लगे। वहां के निवासी को पक्षियों की यह बात भली लगी और वे सब उन हंसों के सम्मान में तरह-तरह के प्रिय एवं सुस्वादु भोजनों का आयोजन करने लगे। विविध प्रकार के कार्यक्रमों से हंस खूब प्रसन्न हुए और उस तट प्रदेश में अन्य पक्षियों के आग्रह पर कुछ दिन रह भी गये अब धीरे-धीरे कौओं का भी रुझान उनकी तरफ होने लगा और वे उस बातूनी उल्का के प्रभाव से अलग अलग अपना ज्यादा समय उन हंसों के पास गुजारने लगे।

अपने इलाके में अपना प्रभाव क्षीण होता देख उल्का कौआ आग बबूला हो उठा। वह गुस्से में तम-तमाता हुआ हंसों के पास आया और उखड़े-उखड़े अंदाज में बोला यह, राज्य मेरा है। मैं यहां का राजा हूं तुम सबों ने अपराध किया है जो बिना मेरी आज्ञा के इस राज्य में रह रहे हो फिर उसने अपने आस-पास के निवासी पक्षियों को कहा—'भला ये हंस मुझ से किस बात में श्रेष्ठ हैं जो तुम लोग इनकी ओर देख समय बरबाद कर रहे हो ? ये हंस मुझ से उड़ान तक में तो जीत नहीं सकते और गुणों में मेरी इनकी क्या तुलना ? हंसों ! तुम्हारा जो मुखिया हो उसे आगे करो, मैं साथ उड़ान भर कर तुम सबों को सबक देना चाहता हूं ताकि फिर भविष्य में इस उल्का के राज्य में भूल कर न आओ उसकी इन दंभ भरी बातों को सुनकर हंसों के मुखिया ने कहा भैया उल्का, हम मानसरोवर वासी हंस हैं और सारी पृथ्वी पर लंबी उड़ान भरना हमारा स्वभाव है। तुम तो एक कौआ ही हो न ? तुम हमारे साथ कैसे उड़ सकोगे ?

हंस की बातों से उल्का कौआ बहुत नाराज हुआ और उसे बुरा भला कहते हुए बड़बड़ाने लगा—'तुम्हें क्या मालूम, मैं एक सौ प्रकार की उड़ानें भर सकता हूं और मेरी हर उड़ान सौ सौ योजन की होती है। इन उड़ानों में इतनी विचित्रिता और विविषता होती है कि तुमने कभी सुना न होगा।' जब मैं तुम्हें अपनी सारी उड़ान दिखाऊंगा, तब तुम्हें मेरी शक्ति का पता चलेगा!'

उल्का की आवेश भरी बातें सुनकर हंस ने अत्यन्त मधुरता से कहा—भैया उल्का, मुझे विश्वास है तुम अवश्य ही सौ प्रकार की उड़ानें जानते होगे लेकिन मैं तो एक ही गति से उड़ता हूं। अन्य किसी भी उड़ान का मुझे ज्ञान ही नहीं है। तुम्हें जो उड़ानें पसन्द हो उसी से तुम उड़ो या फिर चाहिये तो सौ उड़ानें भरो।

फिर क्या था, कौआ और हंस की उड़ानें शुरू हुयीं। कौआ पल क्षण में अपनी उड़ाने बदलने लगा। हंस एक ही उड़ान से उड़ता रहा। कौए की उड़ान से दर्शक पक्षी काफ़ी प्रभावित होने लगे। कौआ तेज उड़ रहा था। हंस की गति काफी धीमी थी। अपने को पीछा होते देख हंस धीरे धीरे अपनी गति बढ़ाने लगा। अब वह समुद्र के ऊपर उड़ रहा था। यह यात्रा काफी दुर्गम थी और कौए को इस यात्रा में तकलीफ होने लगी। दूर दूर तक भी कहीं कोई धरती का कोना ओर टापू वगैरह नहीं दिखायी पड़ता था। यह हताश होकर थक गया, थक कर वह चूर हो गया। डैनों में शिथिलता आने लगी और बार-बार उसके पैर एवं चोंच समुद्र की उफनती जल सतह से टकराने लगे। अब उल्का के चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा नजर आने लगा और मृत्यु उसके सामने मंडराने लगी। बड़ी बुरी हालत हो गयी थी उल्का की।

अन्त में कौआ हताश होकर बोला—'भैया हंस, तुम बुद्धिमान, विवेकी और दयालु हो। अब मैं थक चुका हूं। इसे मेरी हार समझो। अब तुम ही मुझे इस समुद्र की अतल गहराई में डूब कर मरने से बचा सकते हो।'

उल्का कौए की इस दशापर हंस को दया आ गयी। वह उसे अपनी शरण में लेकर उड़ता हुआ तट पर आया। तट पर खड़े सभी पक्षी हंस की दयालुता पर द्रवीभूत हो गये। उन्होंने हंस की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कौए को उसके घमंड का फल मिल चुका था। उस दिन से उसने किसी के सामने अपनी गर्दन उठाकर बात नहीं की और उस क्षेत्रके सभी पक्षी आराम से रहने लगे।

---

सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः। यजु० ३।४१

हे गृहस्थी लोगो! चाहे तुम कार्यभार से थक भी क्यों न गये हो, अथवा कार्यालय के काम से ऊब भी क्यों न गये हो, परन्तु जब तुम घर लौटो तो प्रसन्नचित्त होकर, उत्तम विचारों के साथ, और मन में मोद-प्रमोद को लिये हुए घर में लौटा करो।

# पाणिग्रहण प्रतिज्ञा

## (पद्यात्मक भावानुवाद)

लेखक—श्री वैद्य पण्डित ब्रह्मानन्द त्रिपाठी बी. ए. आयुर्वेद शिरोमणि,

□ □ □

ओम् । गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्

इस नूतन मंगल प्रभात में,
मलय पवन के झोंकों में ।
जीवन के इस मधुमय ऋतु में
स्नेह राग की किरणों में ।।
सुख सौभाग्य लालसा से मैं
सुभग तुम्हारा यह मृदुकर ।
सुमुखि ! ले रहा हूं निजकर में
तुमको हृदय देश में धर ।।

मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।

जिससे जीवन की सन्ध्या में
पतझड़ में जब हों जर्जर ।
एक दूसरे से बल लेकर
चले चलें, ले कर में कर ।।

भगो अर्यमा सविता पुरन्धिः
मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ।। १ ।।

स्वयं अर्यमा जगदुत्पादक,
विविध सृष्टि का संचालक,
सम्मुख शोभित विबुध, देवगण
शिष्टाचारों के पालक ।।
सभी मुझे अर्पित करते हैं
देवि ! तुम्हारा मञ्जुल हाथ ।
गार्हपत्य के संचालन में
सदा रहे यह मंगल साथ ।। १ ।।

भगस्ते हस्तमग्रभीत्

सविता ते हस्तमग्रभीत्

पत्नी त्वमसि धर्मणाऽहं गृहपतिस्तव
।। २ ।।

भावी जीवन में सुखाय ऐ-
श्वर्यों का करलें अर्जन ।
वत्सलतामय, स्नेह सौख्यमय
आत्म सदृश नूतन सर्जन ।।
आज बसावें चलो यहां हम
छोटा सा निज का संसार ।
रानी हो जिसमें तुम सुन्दरि !
मैं राजा प्रभूत सम्भार ।। २ ।।

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वाऽदात्
बृहस्पतिः ।

इस अनन्त जग में अगणित हैं,
युवा और युवती जन भी ।
किससे मिलता कौन, प्रिये! यह
जाना जा सकता न कभी ।
विस्तृत जग के स्वामी ने ही,
आज हमारा योग किया ।
मुझसे पोषण पाने वाली
तुम्हीं बनो मम एक प्रिया ।

मया पत्या प्रजावति शं जीव शरदः
शतम् ।। ३ ।।

शतशत वर्ष स्वस्थ रह प्रेयसि,
शुभकर्मों में सवत रहें ।
सुन्दर, स्वस्थ, सुशील प्रजा से
आवृत हम सानन्द रहें ।। ३ ।।

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं
बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।

देव बृहस्पति की करुणा से,
शिक्षा से विद्वज्जन की,
सौख्य, वस्त्र, धन, साधन मिलते
साधें पूर्ण होयं मन की ।

तेनेमां नारीं सविता भगश्च
सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया ।। ४ ।।

जैसे पृथ्वी को सूर्य किरण से—
स्नेह अंक में भरती हैं,
करती हैं पूर्ण अन्न जन से,
बाधा से रक्षित रखती हैं,
वैसे ही तुमको जग सविता,
सुप्रजावती सुखवती करे,
जग के कण्टक शूलों से, सखि,
निर्मुक्त मृदुल, गुणवती करे ।। ४ ।।

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा
मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा ।

यह विद्युत यह अग्नि और यह
द्यावा पृथिवी सौख्यमयी,
पवन, और यह मित्र वरुण की
शक्ति जगत् की सारमयी ।।
यह ऐश्वर्य प्राप्ति में प्रेरक
स्वास्थ्य सिद्धि सम्पादक तत्व,
विश्व प्राण के निर्माता यह
दिव्य मरुद्गण नामक तत्व,
सौम और गुरु वृन्द दिखाते
मार्ग हमें जो युग युग से
और ब्रह्म सब जग का पालक
प्रेम प्रकाशक जो चिर से,

बृहस्पति र्मरुतो ब्रह्म सोम
इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ।। ५ ।।

अहं विष्यामि मयि रूपमस्या
वेददित् पश्यन् मनसा कुलायम् ।

न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं
श्रन्थानो वरुणस्य पाशान् ।। ६ ।।

स्म्रिमोऽहमम सा त्वं सात्वमस्यमोऽहम् ।
सामाहमस्मि ऋक् त्वं द्यौरहं
पृथिवी त्वम् ।
तावेव विवहावहै सह रेतो दधावहै

यह जगकी सारी विभूतियां
मिल अपने सुखकर गुण से,
आप्लावित नित करें, बढ़ावें
तुम्हें प्रजाओं से, धन से ।। ५ ।।
जीवन का साफल्य और निज
वंश वृद्धि सम्मुख रखकर
और मानकर तृप्ति तृषित
प्राणों की ह्लादमयी सुख कर ।
मैं देख रहा हूं व्याप्त प्रिये ।
तुमको अपने अन्तर बाहर ।
शतदल हृदय पद्म में तव
अवरुद्ध हुआ है मुग्ध भ्रमर ।
तुमसे क्या कुछ है छिपाव
जीवन के गहरे भावों का,
इन श्वासों का, प्राणों का सखि,
और सकल व्यवहारों का ।
निज पौरुष से अर्जित काही
भोग कर निर्भय होकर ।
विघ्न निकल सकते हैं कोई
कभी हमें सखि, क्या छूकर । ६ ।।
हमने जान बूझकर सबसे
सुन्दर, श्रेष्ठ समझ कर ही,
अपनी प्रेम परिधि के शोभन,
निश्चित केन्द्र मान कर ही ।
आज परस्पर वरण किया है
नया चरण हम धरते हैं,
आर्यों की, शिष्टों की विधि से,
प्रणय सूत्र में बंधते हैं ।
तुम हो ऋक् है जिसकी गति मति
सदा व्यवस्थित अर्थमयी,
मैं हूं नव संगीत तुम्हारा
जिसकी लहरी साममयी ।
मैं बन जाऊं द्यौः, पृथिवी तुम,
मैं प्रकाश की किरणों से
आवृत्त करलूं प्रिये ! तुम्हें नव,
दिव्य प्रेम के स्पन्दन से ।

पुत्रान् विन्दाव है बहून् । ते सन्तु जरदष्टय: ।

और जहां नर अक्षम है, जो
असह भार हैं इस जग के
क्षमामयी, वात्सल्यमयी तुम,
ले लो सखि, पृथिवी बन के ।।

नई सृष्टि का भार आज हम,
लेते अपने कन्धों पर।
है उत्तर - दायित्व नई
पीढ़ी के सर्जन का हम पर ।

अत: श्रेष्ठ जो कुछ है जग में
उसका करलें अन्तर्भाव,
जिससे आयुष्मान प्रजा हो
और बढ़ावें मानव भाव ।।

सं प्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ पश्येम
शरद: शतम् जीवेम शरद: शतम्
शृणुयाम शरद: शतम् ।। ७ ।।

एक दूसरे में रुचि रखकर
प्रेम मग्न हम सदा रहें।
वाणी हो बलवती सत्यमय,
दृष्टि हमारी सबल रहे ।। ७ ।।

सौ वर्षों तक सुनें, हमारी,
सभी इन्द्रियां विमल रहें।
स्वयं शक्त हों, साथी जनकी
सेवा का सामर्थ्य रहे ।।

---

# तुम नहीं सुधर सके अभी —निर्भय हाथरसी

रोग-ग्रस्त तन सेवा गए, तुम नहीं सुधर सके अभी ।
पापियों के पुज्य तर गए, तुम नहीं सुधर सके अभी ।
राह रोक कर पड़ी हुई, नालियों की बात क्या कहें ?
शहर के गटर सुधर गए, तुम नहीं सुधर सके अभी ।
आत्म समर्पण के भाव से, लोक नायकों के सामने,
चोर डाकू तोबा कर गए, तुम नहीं सुधर सके अभी ।
जिनके नाम-काम से कभी, प्राणियों के जन्म रुक गए,
ऐसे-ऐसे लोग डर गए, तुम नहीं सुधर सके अभी ।
कुछ इन्द्रासनों की गोद में पलने वाले देवी देवता
जो अमर थे वह भी मर गए, तुम नहीं सुधर सके अभी ।
कल तलक अगर-मगर रहे, कांपते डगर-डगर रहे,
आज हो जगर-मगर गये, तुम नहीं सुधर सके अभी ।
राजनीति राज हो गई, कूट नीति ताज हो गई
आचरण-चरण ठहर गए, तुम नहीं सुधर सके अभी ।

# 'ईश-भक्ति बनाम वस्तुस्थिति'

—ब्रजमोहन आत्मदीप—

□ □□

ईश्वर के नाम पर लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करने वाले भक्तों एवं धर्मनिष्ठ सज्जनों का ध्यान मैं एक ऐसे नग्न सत्य की ओर आकर्षित करना चाहता हूं, जिस से वे शुतुरमुर्ग की भांति मुंह छिपाये नाना प्रकार से प्रभु सेवा में मग्न हैं।

इस बात से कोई इन्कार नहीं करेगा कि खुदा के बन्दों की अनदेखी करके की गई खुदा की बड़ी-२ इबादतें भी निरर्थक हैं। आज जहां एक ओर परमेश्वर के रहने के लिये भव्य व आलीशान गगनचुंबी अट्टालिकाये हैं, जिन्हें हम सुविधानुसार मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा या गिरजाघर कुछ भी कह लेते हैं, वहीं दूसरी ओर भगवान के करोड़ों बंदे गरीबी के मारे बिना छप्पर के मरते-जीते सर्दी-गर्मी-बरसात में गुजर कर रहे हैं! किन्तु मन्दिर, मस्जिद, चर्चा आदि के निर्माण व सजावट पर प्रतिवर्ष बेतहाशा खर्च होने वाले ये करोड़ों रुपये गरीबों के लिये झोंपड़ियां बनाने पर खर्च नहीं किये जा सकते? शायद दीनबन्धु आड़े आ जाते हैं!

आज करोड़ों दरिद्रनारायणों के पास तन ढकने को एक-२ चिथड़ा तक नहीं है जबकि 'दीनानाथ' को बेशकीमती वस्त्रों एवं रत्नाभूषणों से सुसज्जित रखा जाता है। लेकिन इस अनुपयोगी व्यय को भी नंगे-गरीबों के लिये एक-२ लंगोटी की व्यवस्था करने पर खर्च करके उपयोगी नहीं बनाया जाता। क्या यही सिखलाता है आज का धर्म ?

मालिक के न जाने कितने बन्दे रोजाना दो जून रोटी के लिये तरस-२ कर तड़पते हुए सो जाते हैं, मगर उस सबके मालिक को सुबह-शाम घी पुते पांचों पकवानो का भोग चढ़ाना लाजिमी है! मन्दिरों के बाहर बहुतेरे अपंग—अपाहिज प्रभु भक्तों से कुछ खाने को मिल जाने की आस लिये पड़े रहते हैं, परन्तु उन लाचारों की किस्मत में तो पूजा कर ने वाले भक्त का किंचित् प्रसाद भी नहीं होता! परमात्मा की ऐसी औचित्यहीन सेवा-सुश्रूषा में बेरहमी से खर्च की जाने वाली अनाप-शनाप धन-दौलत क्या भूखों को दो जून रोटी खिलाने पर व्यय नहीं की जा सकती? क्या इसमें भी भक्त को 'दयानिधे' के कुपित हो जाने का भय रहता है?

इन्सान बेचारे को झोंपड़े में उजाला करने के नाम पर चाहे माटी का एक दीया भी नसीब न हो, पर परमपिता के महल में २४ घन्टे शुद्ध घी की अखण्ड ज्योतियां सतत् प्रज्ज्वलित रहना परमा-

वश्यक है। तमाम इन्सानियत भले ही गहन अन्धेरे में आकण्ठ डूबी हो, किन्तु उस सबके 'रखवारे' से घर में रोशनी सब से पहले और निहायत जरूरी है।

एक ओर तो हालात इतने बदतर हैं कि भगवान की अनगिनत सन्तानों को रोजाना खाने को तेल भी नहीं मिल पाता और दूसरी ओर बेहतरी का आलम यह है कि प्रभु-पुत्रों के कल्याणार्थ टनों घी (व खाद्य सामग्री) के महायज्ञ आयोजित किये जाते हैं ! मैं जानना चाहता हूं, क्या औचित्य है इन सबका ? क्या इसी को कहते हैं, कलियुग की धार्मिकता ?

पाठक स्वयं फैसला करें कि वह मनुष्य कहां तक और कितना धार्मिक है, जो अपने पड़ोस के गरीब के पिचके पेट की उपेक्षा करके ईश्वर को पांचों पकवानों को बहुमूल्य भोग चढ़ाता है ? या उस हरि-भक्त को स्वर्ग मिलेगा या नर्क, जो अपने आसपास बिना टीन-टप्पर के नीली छतरी के नीचे भूखे-नंगे असहायों की शुतुरमुर्गी उपेक्षा करके जगत्-पिता के लिये मन्दिर, मस्जिद या चर्च बनवाता है ?

जब तक एक-२ इन्सान को दोनों वक्त की रोटी नहीं मिल जाती, तब तक धार्मिक आडम्बरादि पर खर्च किया गया एक-२ पैसा सारहीन है, अन्यायपूर्ण है। इसलिये अगर कोई खुदा का बन्दा सच-मुच धार्मिक बनना चाहता है या अपना या जगत् का कल्याण चाहता है, तो उसे खुदा से पहले खुदा के बन्दों की तरह देखना चाहिए कि उनके क्या हाल हैं ? तभी न्यायप्रिय परमेश्वर तक उसकी आवाज पहुंचेगी, अन्यथा कदापि नहीं !

---

# कौड़ी मोल बेच मत कीमती रतन

**— श्री परमात्मा शुक्ल —**

पानी के बबूले-सा मिला है जीवन।
झूठे अभिमान में न फूल मेरे मन ॥

देह की गठन हो या रूप का नशा।
अंत में तो होती सब एक-सी दशा ॥
दर्पण में देख, रीझे जिस मुख पर।
सुन्दर भवन ये बनेगा खण्डहर ॥

एक मुट्ठी राख है ये कंचन सा तन।
झूठे अभिमान में न फूल मेरे मन ॥

धन-जन भवन रतन अपने।
भ्रम हैं ये सब मोह भरे सपने ॥
यही भ्रम हीरे—जैसा जीवन छले।
खाली हाथ आये, खाली हाथ चले ॥

पंछी उड़ जाये चले कोई न जतन।
झूठे अभिमान में न फूल मेरे मन ॥

जिसे माना अपना, पराया निकले।
गैर लगे, वही कर थाम के चले ॥
मोह में न मकड़ी सा जाल तू बना।
पूरा होता कहां हर एक सपना ॥

तिनकों से टूट जायें प्यार के वचन।
झूठे अभिमान में न फूल मेरे मन ॥

धन एक पंछी है, जो डाल बदले।
एक पिंजरे में बंद होके न पले ॥
कहिये तो बैठने बंबूल को चुने।
रस भरे आम की पुकार न सुने ॥

ऐसी छलना के लिए कर न रुदन !
झूठे अभिमान में न फूल मेरे मन ॥

धन मिलता है उपकार के लिये।
मन मिलता है प्रिय प्यार के लिये ॥
जीवन है सफल उपकार के लिये।

कौड़ी मोल बेच मत कीमती रतन।
झूठे अभिमान में न फूल मेरे मन ॥

# प्रतिकार

—गौतम—

□ □ □

"मैं तुम्हारे उपकार का बदला प्राण देकर चुकाऊंगी राजकुमार !" "प्रिय ! मैंने तुम्हारे प्राणों की रक्षा की है, इसका अर्थ यह नहीं कि मैं तुम्हारे प्राण लेलूं। यह मेरे अधिकार के बाहर की बात है।"

रात्रि अधिक बीत चुकी थी ! निशाकर की किरणों से छिपा तट आलोकित हो चुका था। उज्ज्वल चांदनी अवनी पर पड़ी हुई बर्फ सी प्रतीत हो रही थी ! चारों ओर शांति का साम्राज्य था ! इस घोर नीरवता में जबकि संसार घोर निद्रा में निमग्न था, दो प्राणी क्षिप्रा के सुहावने तट पर प्रकृति सौंदर्य का लाभ उठा रहे थे। देखने से दोनों नारियां अवश्य प्रतीत होती थीं, पर वास्तविकता कुछ और ही थी !

मंदसमीर के झोंकों से हिलते पेड़ों पर घोसलों में बैठे पक्षियों के बच्चों के बोलने से कभी-कभी शांति भंग हो जाती थी। जंगली पुष्पों से प्रकृति का सौंदर्य और अधिक द्विगुणित हो रहा था। इस सौंदर्य में दोनों नारी रूप नदी के दो किनारों की भांति लग रहे थे।

एक ने 'शांति भंग करते हुये कहा'—

"यह राज द्रोह है, और मैं एक आर्य नारी हूं। मझसे यह दुस्साहस होना असम्भव है।"

"राजद्रोह नहीं, यह राजनीति है; जिस पर चलने के लिये कोई भी क्षत्रिय कभी सोच विचार नहीं करता।"

"आप कहते अवश्य हैं, लेकिन न्याय सदन में—महाराज विक्रमादित्य के समक्ष असत्य भाषण मेरे लिये बहुत बड़ी समस्या है।"

"लेकिन तुमने मेरी सहायता का वचन दिया है। आर्य नारी का अपने वचनों पर चलना परम कर्तव्य—होता है।"

"राजकुमार···मैं तुम्हारे उपकार के बोझ से सदैव दबी रही हूं, और अब उससे छूटने के लिये आप जो भी कहेंगे, करूंगी।"

"मैं यह जानता हूं कि तुम्हें यह झूठा अभियोग लेकर विक्रमादित्य के समक्ष उपस्थित होने में कितना कष्ट होगा।··· लेकिन···इस षडयंत्र के बिना मेरा उज्जयनी से निकलना असम्भव है ! और··· और जब तक तुम्हारा साथ न होगा, मैं इस नाटक में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।"

इस वाद विवाद के साथ दोनों छाहें उज्जैनी की ओर बढ़ रहीं थीं।

पुष्पिके; क्या तुमने अपने प्राणों की बाजी लगाकर मेरे उपकारों का बदला चुकाने का वचन नहीं दिया ?···फिर तुम तो जानती हो···

बोलते-बोलते अचानक रुक कर इधर-उधर एक दृष्टि डाल कर पुन : बोलना प्रारम्भ करते हुये···

"और मुझे डर लगता है कि कहीं हम तुम अलग न हो जायें।"

"अगर यह नाटक सफल रहा तो ?"

"तो क्या ? फिर हम दोनों को कौन अलग कर सकता है।"

"राजकुमार !"

और राजकुमार ने पुष्पिके को अपने अंकपाश में लेना चाहा ! किन्तु पुष्पिका तुनक कर झटके से एक ओर हट जाती है। इसी प्रकार कुछ देर तक दोनों आपस में मनो विनोद करने के पश्चात एक सघन पथ से बस्ती की ओर बढ़ जाते हैं।

× × × ×

"तुम्हारे कथनानुसार मैंने एकान्त न्याय कक्ष में अभियोग सुनने की व्यवस्था कर दी है ! अब तुम निःसंकोच अपना अभियोग प्रस्तुत कर सकती हो।

क्या तुम्हें विक्रमादित्य के न्याय पर विश्वास नहीं है ?"

न्याय कक्ष में प्रवेश करते हुए पीछे आ रही नारी की ओर मुड़ते हुये गम्भीर मुद्रा में महाराज विक्रमादित्य ने कहा।

न्याय कक्ष पूर्णतः शून्य था ! सिंहासन की ओर बढ़ रहे विक्रमादित्य और उनके पीछे-पीछे चल रही एक २० वर्षीय नारी के सिवा और कोई न था। न्याय कक्ष एक सुसज्जित कमरे में था।

महाराज विक्रमादित्य की आयु लगभग २६ वर्ष की थी ! वह राज चिन्हों एवं आभूषणों से सुसज्जित थे। युवती का अधिकांश शरीर गहनों से सजा था।

"अच्छा अब कहो, मैं सुनने को तैयार हूं।"

सिंहासन के निकट पहुंच कर तलवार पर हाथ रखते हुये, विक्रमादित्य ने कहा, और सिंहासन पर बैठ गये।

युवती भी पास आकर सिंहासन के एक ओर सर झुका कर खड़ी हो जाती है।

"तुम चुप क्यों हो देवि ?"

युवती को सम्बोधित करते हुये महाराज — विक्रमादित्य ने कहा—

"मैंने तुम्हारे कथनानुसार एकान्त न्याय कक्ष की व्यवस्था कर दी है। फिर भी तुम अपना अभियोग क्यों नहीं प्रकट करतीं ?"

कुछ देर रुककर !

"तुम कहती हो कि मैं आर्यनारी हूं, लेकिन मुझे आर्य नारियों के एक भी गुण तुम में नहीं—दिखाई पड़ते"

"अभियोग सुनने के प्रथम मैं अभियोगी का नाम जानना चाहता हूं ?"

"मुझे विभावरी कहते है, महाराज !"

"विभा—वरी···हूं ऽ !

अच्छा, तो अब तुम अपना अभियोग सुनाओ। पर···हां, तुम यह तो बताओ, रहने वाली कहां की हो ?"

"विदिशा"

कांपते हुये भारी स्वर में विभावरी ने कहा।

"तो तुम यहां किस लिये आयीं थीं?"

महाराज ने पुनः प्रश्न किया।

"क्षिप्रा स्नान के लिये।"

"तुम यहां कब से हो ?"

"करीब एक माह से, और···

हां, हां, कहो ना—रुक क्यों गयीं ?"

"और पिछले ३ वर्षों से बराबर स्नान करने आ रही हूं महाराज, लेकिन···

"तुम रुकती क्यों हो, जो कुछ कहना चाहती हो स्पष्ट कहो। यह मत भूलो कि यह विक्रमादित्य का न्याय कक्ष है।"

"लेकिन···लेकिन, मुझे कहने में—लज्जा का अनुभव होता है, महाराज !"

"लज्जा, आर्य नारी के लिये अशोभनीय बात है। फिर यहां पर मेरे और तुम्हारे सिवा इस समय और कोई नहीं है।

"महाराज,···"

विभावरी ने कांपती हुई आवाज में कहना प्रारम्भ किया।

"महाराज कल संध्या समय जब मैं पुष्प चयन हेतु क्षिप्रा तट पर गई हुई थी, कि इतने में वहां कुछ देर बाद एक दूसरी स्त्री भी पहुंच गई ! उसने मेरी सहायता हेतु मुझ से विनय की और मैंने उसे स्वीकृति भी दे दी ! कुछ देर बाद वह अपने हाथों से मेरा फूलों द्वारा शृंगार करने लगी···

"फिर ?"

"उस समय उसका स्पर्श मेरे शरीर पर अस्वाभाविक था।"

"क्या···क्या कहा···स्पर्श···अस्वाभाविक था।"

अभी तक चुप-चाप सुन रहे महाराज इस बात से अचानक विचलित हो उठे ! और सिंहासन से उठ कर टहलने लगे।

"इसका मतलब कि स्त्री वेश में वह कोई पुरुष था।"

"मेरा भी यही विचार है, महाराज !"

"हूंऽऽ···और···और तुमने कोई अवरोध प्रकट नहीं किया ?"

महाराज ने विभावरी पर एक तीव्र दृष्टि डालते हुये कहा।

"और इस अपमान को सहन कर तुम चुपचाप न्याय सभा की ओर चली आयीं, तुमने नारी कुल को कलंकित किया है।"

"कुछ रुक कर महाराज ने पुनः एक तीव्र दृष्टि विभावरी पर डाली !"

"जानती हो विभावरी !···ऐसे—अपराधों, का प्रायश्चित करना उज्जैनी की प्रत्येक नारी स्वयं जानती है। और···और एक तुम हो जो कि ऐसे अभियोग को लेकर मेरे समक्ष न्याय की भिक्षा हेतु उपस्थित हुई हो।"

तुममें आत्म गौरव नहीं, आत्म सम्मान नहीं, फिर तुमने अपने को आर्य नारी कहने का साहस कैसे किया ?"

"मैंने अभियुक्त को स्वयं बन्दी बना रखा है, महाराज ! क्या यह प्रमाण आर्य नारी की गौरव रक्षा के किये उचित न होगा ?"

"तुम्हें अभियुक्त को वहीं सजा देनी थी !"

कुछ रुक कर आगे बढ़ कर पार्श्व में लगे घन्टे पर चोट करते हुये।

"मैं अभियुक्त को अभी देखना चाहता हूं।"

मुड़ कर कक्ष के मध्य में टहलते हुये।

"वह नर कुल का कलंक नारी वेश में कहां छिपा है !"

"आज्ञा महाराज"

बीच में ही प्रणाम करते हुये द्वारपाल ने कहा।

"अभियुक्त उपस्थित हो !"

द्वारपाल की ओर बिना देखे ही विक्रमादित्य ने कहा।

"जो आज्ञा" कहकर द्वारपाल बाहर निकल गया ! एक दूसरी बन्दिनी युवती को साथ लेकर अन्दर आया ! फिर अकेला ही चुप बाहर चला जाता है।

"तो यही है तुम्हारा अभियुक्त, विभावरी ?"

घूरते हुये महाराज विक्रमादित्य ने पूछा।

"हां महाराज !"

"अपने कलंक को नारी के आंचल में छिपाने का असफल प्रयत्न करने वाले कापुरुष, मैं तुम्हारा नाम जानना चाहता हूं ?"

अभियुक्त की ओर घूरते हुये विक्रमादित्य ने पूंछा।

"मैं···मैं···नारी हूं, महाराज !

कापते हुये स्वर में बंदिनी ने कहा जो अब स्वतंत्र थी।

"यह तो सभी देखने वाले कह सकते हैं, कि तुम नारी हो !···किन्तु···मैं तुम्हारा नाम पूछता हूं ?"

"मेरा नाम पुष्पिका है, महाराज !"

"नाम तो बहुत सुन्दर है,···

किन्तु मैं तुम्हारा वास्तविक नाम जानना चाहता हूं ? जो कि अभी विभावरी के कथन से सिद्ध हुआ है !"

"मैं···मैं···पुरुष हूं महाराज !"

विभावरी की ओर देखते हुये पुष्पिका ने कहा !

"हां, यही तो मैं भी जानना चाहता हूं !"

"नहीं, नहीं,···क्षमा करें महाराज, मैं स्त्री हूं !"

"क्या तुम्हें यह नहीं ज्ञात कि तुम विक्रमादित्य के समक्ष न्याय सभा में उपस्थित हो ?"

तलवार पर हाथ रख कर दांत पीसते हुये क्रोध से विक्रमादित्य बोले।

"विभावरी···अभियुक्त से कहो कि वह अभियोग स्वीकार करे।"

महाराज विक्रमादित्य ने विभावरी की ओर संकेत करते हुये कहा—

अभियुक्त पुष्पिका और विभावरी आपस में बातें करने लगती हैं, और विक्रमादित्य दोनों की मुखाकृति पर दृष्टि गड़ा कर गम्भीरता से उतरते-चढ़ते भावों का अध्ययन करते हैं।

अचानक उछल कर···

"सांप···सांप !"

सांप की आवाज सुनकर पुष्पिका सिंहासन के पीछे छिप जाती है। किन्तु विभावरी अपनी जगह पर खड़ी रहती है।

"विभावरी !···तुम डरो नहीं ?"

विक्रमादित्य ने शंका व्यक्त करते हुये पूछा।

"मैं···मैं आर्य नारी हूं, महाराज!"

अपने को संयत करते हुए दृढ़ स्वर में विभावरी ने कहा।

"क्षमा कीजिये महाराज, विभावरी पुरुष है !"

सिंहासन के पीछे से निकलती हुई (पुष्पिका) ने बीच में ही टोक कर कहा।

"मेरा भी कुछ ऐसा ही विचार है।"

गम्भीर होते हुये विक्रमादित्य ने कहा।

पुष्पिका, विभावरी के पास जाकर पश्चाताप एवं ग्लानि मिश्रित स्वर में—विभावरी को सम्बोधित करते हुये कहा—

"राजकुमार; मैंने आपसे पहले ही

कहा था, कि मैं, सम्राट के समक्ष असत्य भाषण न कर सकूंगी, लेकिन आप नहीं माने; मैं विवश हूं आप क्षमा करे !"

फिर अश्रुपूरित नेत्रों से सम्राट विक्रमादित्य की ओर मुड़कर कहा—जो अभी तक इस घटना को समझने का प्रयत्न कर रहे थे ।

"महाराज यह विभावरी नहीं, राजकुमार छत्रप भूभक हैं ।"

"राजकुमार छत्रप भूभक ?"

आश्चर्य से विभावरी की ओर देखते हुये महाराज विक्रमादित्य ने कहा—

"धिक्कार है राजकुमार, मैं तुम्हें वर्षों से ढूंढ रहा था । क्या तुम युद्ध में हार कर भागने के पश्चात इसी प्रकार उज्जयिनी की नारियों के बीच जीवन यापन करते रहे हो ?···और आज मेरे समक्ष एक झूठा अभियोग लेकर उपस्थित हुये हो ! तुम इतने कायर निकले राजकुमार, कि एक आर्य नारी का चरित्र चित्रण तक तुम्हारी सामर्थ्य से बाहर रहा ?"···

कुछ देर रुक कर पुनः विभावरी की ओर संकेत करते हुये कहा—

"तुम्हें मालूम है राजकुमार, शकों से मेरा क्या व्योहार चलता है !"

घन्टे पर चोट कर पुनः राजकुमार की ओर मुड़ कर—

"इस अपराध की सजा, तुम्हें प्राण दण्ड मिलेगी !"

द्वारपाल आता है और झुक कर अभिवादन करता है ।

"द्वारपाल, उसे ले जाकर शस्त्रागार से वेश परिवर्तित कराकर उपस्थित करो !"

विभावरी की ओर संकेत करते हुये महाराज विक्रमादित्य ने द्वारपाल से कहा ।

द्वारपाल विभावरी के रूप में खड़े राजकुमार को लेकर जाता है ! महाराज विक्रमादित्य पुष्पिके की ओर मुड़कर जो अभी तक सहमी हुई खड़ी थी ।

"पुष्पिके; तुमने इस प्रसंग के चित्रण को प्रस्तुत कर घोर राज द्रोह किया है !···किन्तु···साथ ही तुमने दुश्मन की षडयंत्र कारी नीति का परदा मेरे समक्ष हटाया है, इस लिये मैं तुमसे प्रसन्न हूं !"

कुछ रुककर···"पर मैं अभी तक इस अभिनय का तात्पर्य नहीं समझ सका !"

"मैं बताऊंगी महाराज, लेकिन एक शर्त पर"

"वह कौन सी शर्त है ?"

"राजकुमार की क्षमा प्रार्थना, महाराज !"

"पुष्पिके; राजकुमार को अब एक ही शर्त पर क्षमा किया जा सकता है, और वह है कि—राजकुमार आर्य धर्म स्वीकार करें ! अन्य कोई भी उपाय नहीं है ।

"यह तो राजकुमार के लिये असम्भव है, महाराज !"

इसी समय राजकुमार भूभक सैनिक भेष में हाथ में तलवार लिये प्रवेश करता है, जिसके कारण—महाराज विक्रमादित्य एवं पुष्पिके के मध्य वार्तालाप का तारतम्य टूट जाता है ।

राजकुमार की ओर मुड़कर विक्रमादित्य ने पूछा—

"राजकुमार; मैं तुम्हारी अंतिम इच्छा जानना चाहता हूं,···बोलो···

आर्य धर्म स्वीकार करते हो, या मृत्यु दण्ड ?"

"मृत्यु"

राजकुमार ने गम्भीर मुद्रा में कहा।

"लेकिन दुःख इस बात का कि मुझे उज्जैनी की नारी से अपने उपकार का बदला न मिल सका।"

"तुम अपने उपकार का बदला चाहते हो राजकुमार। और वह भी एक नारी से!"

उपहास करते हुये महाराज ने कहा—"ठीक है, तुमने उज्जैनी की नारी का उपकार किया है। अतः तुम्हें मृत्यु दंड से मुक्त किया जाता है, अब केवल तुम्हारे दोनों हाथों का अभिषेक किया जायेगा।"

द्वार की ओर मुड़कर···

"द्वारपाल, बधिक को शीघ्र बुलाओ?"

× × × ×

महाकालेश्वर के मन्दिर में महाराज विक्रमादित्य, पुष्पिका, राजकुमार भूभक तथा बधिक उपस्थित है।

"राजकुमार! एक बार पुनः विचार कर लो; बोलो आर्य धर्म स्वीकार है?"

राजकुमार ने बिना किसी उत्तर के दोनों हाथ जोड़ कर मूर्ति की ओर बढ़ाते हुये—

"बधिक; अपना कर्तव्य पूरा करो!"

बधिक महाराज विक्रमादित्य की ओर देखता हैं महाराज कुछ उदास से स्वर में कहते है।

"ठीक है, राजकुमार! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं क्या कर सकता हूं!"

बधिक की तरफ देख कर!

"बधिक, अपने कर्तव्य का पालन करो!"

मन्दिर में एक दम शांति छा जाती है। बधिक अपनी तलवार ऊपर उठाकर वार करता है इसी क्षण अचानक पुष्पिका दौड़ कर तलवार और राजकुमार के बीच आ जाती है। पुष्पिके के मस्तक पर बधिक की उठी हुई तलवार से चोट लगती है जिसके कारण पुष्पिका मूर्ति के समक्ष गिर जाती है।

"मैं आर्य धर्म स्वीकार करता हूं!"

राजकुमार ने विक्रमादित्य की ओर मुड़ते हुये कहा, फिर पुष्पिके की ओर मुड़कर—

"पुष्पिके; तुमने यह क्या किया?"

राजकुमार के प्रश्नों का उत्तर न देकर पुष्पिका ने महाराज विक्रमादित्य की ओर देखकर टूटे हुये स्वरों में कहा—

"महाराज···मैंने···अपने····उप··· कारी···राज···कुमार····को····उन··· के···उपकार···का···बदला····चुका··· पा···ई! अब···मेरी···अंतिम···प्रार्थ··· ना···कि···आप···इन्हें···क्षमा···कर··· दें।

इतना कह कर पुष्पिका का निर्जीव शरीर एक ओर लुढ़क जाता है। और वह सदैव के लिये इस संसार से विदा हो जाती है। धन्य है आर्य नारी! और उसका आदर्श!!

---

एक पिछड़े हुए देश के एक समाचार पत्र ने सुर्खी जमायी—'हमारे देश में मंहगाई आसमान से बातें कर रही है।'

सरकार ने इस बात का जोरदार खंडन करते हुए सरकारी बयान जारी किया कि 'मंहगाई' आसमान से नहीं, 'जनता से बातें कर रही है।'

---

# वेद मंदिर के लिए प्राप्त दान सूचि

□ □ □

## २५) देने वाले महानुभाव

**सर्वश्री**

१. मन्त्री आर्य समाज—राम सनेही घाट ।
२. सुधांशु शेखर—उत्तरकाशी ।
३. ओन्त्रेत सिंह—लुधियाना ।
४. सुखानन्द—पूना ।
५. चारेख चम्पक लाल—भावनगर ।
६. वेदप्रकाश—गुलावठी ।
७. महेन्द्र आर्य मिल्स—हापुड़ ।
८. योगेश्वर देव—कानपुर ।
९. अरविन्द कुमार—नैनीताल ।
१०. रामकृष्ण—इटावा ।
११. कमल नारायण—कलकत्ता ।
१२. हंसराज—बीकानेर ।
१३. रामाधार—मेरठ ।
१४. खुशाल सिंह—इज्जत नगर ।
१५. R. R. Sevhsaria—बम्बई ।
१६. S. N. अग्रवाल—कलकत्ता ।
१७. दाऊ लाल—मेहसाना ।
१८. केशव राम—कलकत्ता ।
१९. सियाराम पाठक—मुरेना ।
२०. राणा दास—जोधपुर ।
२१. सुदामा स्वामी—बस्तर ।
२२. ओमप्रकाश—जोराहट ।
२३. रामचन्द्र—धामपुर ।
२४. सुरेन्द्र पाल—नूरपुर बैरी ।
२५. मि० प्र० वर्मा—गौहाटी ।
२६. मिस्त्री शंकर—मिले ।
२७. श्याम सुन्दर—आगरा ।
२८. R. C. माथुर—उदयपुर ।
२९. सुखदेव—नई दिल्ली ।
३०. सुन्दर—फैजाबाद ।
३१. राजकुमार—कलकत्ता ।
३२. डा० दुखन राम—पटना ।
३३. डा० हरी लाल—दोस्तपुर ।
३४. पं० राधाशरण—बरेली ।
३५. गोवर्धन प्रसाद—रांची ।
३६. चौ० बृजराज सिंह—बुधवार ।
३७. रामकुमार तिवारी—आरा ।
३८. सन्तोष कुमारी—दिल्ली ।
३९. डालचन्द—रेहड़ ।
४०. गोपाल दास—गुना ।
४१. शिववचन—गांजीपुर ।
४२. सूरज प्रसाद—हमीरपुर ।
४३. चौ० सत्यनारायण—हैदराबाद ।
४४. रामविलास—कलकत्ता ।
४५. आर्य विद्या मन्दिर—मन्डी ।
४६. लक्ष्मी चन्द—अलीगढ़ ।
४७. M.L. अग्रवाल—कलकत्ता ।
४८. बाबूराम—शिकोहाबाद ।
४९. लक्ष्मी चन्द—मंगलोर टाऊन ।

५०. बाल केशरी—बालियाना।
५१. प्रमोद कुमार—डबरिया।
५२. राचप्पा—कोहीर।
५३. M.L. Kotwal—जम्मूतवी।
५४. बदगत लाल—अमृतसर।
५५. शंकर लाल—जोधपुर।
५६. रमेश चन्द—बिलारी।
५७. बीर सिंह—शाहजहांपुर।
५८. विश्वनाथ मेहता—शिमला।
५९. हंसराज—गोहाटी।
६०. अर्जुन दास—जीन्द।
६१. D. S.N. Gupta & sons—Muradabad।
६२. हरिनन्दन—जमशेदपुर।
६३. डा० आर० एस० लाल—छतरपुर।
६४. Jank Prasaly Bhagat—Bombay।
६५. जयनारायण—Banglora।
६६. बिहारी राम—मुरादाबाद।
६७. गन्धर सिंह—A.C.।
६८. आयुवद—रविशगोर।
६९. सन्तोख सिंह—हसनपुर।
७०. रघुनाथ प्रसाद—चम्पारन।
७१. एस० आर० भटनागर—कोटा।
७२. दिवाकर—छतरपुर।
७३. शिवराज—बदायूं।
७४. महाशय रामजीलाल—मीरपुर।
७५. वर्मा ट्रेडिंग कम्पनी—दिल्ली।
७६. त्रिनाथ—सीगीसरी।
७७. तेजू कुम्हार—कुसुन्डा।
७८. जनार्दन—टीकमगढ़।
७९. परसनाथ—भरतपुर।
८०. यशवन्तराव—चिखलगांव।
८१. बनारसी शाही—पचेतडेम।
८२. धनेश कुमार—गोन्डा।
८३. सुरेशपाल—टन्डेढ़ा।
८४. शान्ती भटनागर—सीतापुर।
८५. हंसमुख—मुरादाबाद।
८६. महावीर प्रसाद—चतरा।
८७. वेंकट—Serly।
८८. बनारसी दास—मवाना कला।
८९. दीनदयाल—भिवानी।
९०. रामगोपाल—अमरोहा।
९१. तेजू कुम्हार—कुसुन्डा।
९२. कान्ति चन्द्र—कांसगंज।
९३. डा० अमर चन्द—अकबरपुर।
९४. दिवान—दिल्ली।
९५. एस० सरकार—अकलतरा।
९६. शिवराम—कुल्लू।
९७. काशीराम—जालन्धर।
९८. गोरधन—जोधपुर।
९९. आर० वी० यादव—कुण्डा।
१००. कस्तूरी देवी—हापुड़।
१०१. लक्ष्मण—सुरेन्द्र नगर।
१०२. टी० आर० शर्मा—शेगांव।
१०३. त्रिलोकी नाथ—वाराणसी।
१०४. वीरबल—बलराम प्रसाद।
१०५. आर० एन० मिश्रा—कुसुन्डा।
१०६. स्वाऽनिजानन्द सरस्वती—जोधपुर।
१०७. जनक दुलारी—मालव।
१०८. नत्थी लाल—भरतपुर।
१०९. गणपत लाल—टोंक।
११०. विश्वेश्वरानन्द—रामगठवा।
१११. सरला—बरेली।
११२. शिवप्रसाद—धनबाद।
११३. गुलाब राम—हुलास नगर।
११४. डा० मगन भाई—जामनगर।
११५. डा० एम० यालप्पा—गढ़वाल।
११६. तारीराम—द्वाराहाट।
११७. बुद्धसैन—सोरो।

११८. हरीश—उभानी ।
११९. विश्वनाथ—बम्बई ।
१२०. मन्त्री आर्य समाज—सासनी ।
१२१. जयावेन—संख्येश्वर ।
१२२. गौर लक्ष्मी—मिर्यालगुडा ।
१२३. देवीदास—तुलजापुर ।
१२४. रामलाल—जम्मू ।
१२५. पी० वी० कुर्मी—बाकीमोगरा ।
१२६. रामकुमार—धमतरी ।
१२७. तिलकराज—कैसल ।
१२८. गुलाब सिंह—मिलाई नगर ।
१२९. तुलसी प्रसाद– लगमा ।
१३०. शीतला प्रसाद—हाजी पट्टी ।
१३१. डा० एम० पी० गुप्ता—धमतरी ।
१३२. राधाकृष्ण—बरेली ।
१३३. पी० के० केजरीवाल—धनबाद ।
१३४. जगन्नाथ—कोटद्वार ।

□

## ५) देने वाले महानुभाव

**सर्वश्री**

१. कालू राममाली—भोगपुर ।
२. कन्हैया लाल—गोरखपुर ।
३. स्वर्ण भटनागर—दिल्ली ।
४. इन्चार्ज—ननौटा ।
५. लीलावती—कांगड़ा ।
६. रामदास—होशियारपुर ।
७. सावरमल—रतन नगर ।
८. आर० के० शर्मा—दिल्ली ।
९. राघश्याम—कारोई ।
१०. सुरेश चन्द—माढ़र ।
११. जगत नरायन—पौड़ी ।
१२. नन्द राम—बर्नपुर ।
१३. शिव भगत– दिल्ली ।
१४. डी० जे० पडरीनाथ—आरमूर ।
१५. विशन आर्य—रमधा ।
१६. बी० एन० प्रसाद—बर्दवान ।
१७. के० कनकप्पा—धननादा ।
१८. जगत राम—नई दिल्ली ।
१९. गोकल प्रसाद—देवगांव ।
२०. किरण कुमार—।
२१. छोटे लाल—अलीगंज ।
२२. डी० एन०—आसमकर ।
२३. सूरज प्रकाश—HPS. ।
२४. रामनारायण—बीजनवारी ।
२५. दिलीप—कतरासगढ़ ।
२६. धर्मेन्द्र—वेलूर ।
२७. हीरा लाल—तीन पहाड़ ।
२८. महेशानन्द—जमशेदपुर ।
२९. रामप्रसाद—हरनौत ।
३०. रामनारायण—बीजनवारी ।
३१. राधेश्याम—मुसाफिर ।
३२. दलपत राम—गनदेवी ।
३३. परस राम—हिसार ।
३४. आर्य समाज मन्दिर—मेरठ ।
३५. जयपाल—धोलड़ी ।
३६. आर्य समाज—बहजोई ।
३७. रामकिशन कपाही—वाराणसी ।
३८. रुद्रदत्त शुक्ल—कानपुर ।
३९. प्रेम प्रकाश—दिल्ली ।
४०. आर्य समाज—अढीग ।
४१. हरी प्रसाद—उसका बाजार ।
४२. मनमोहन—जयपुर ।
४३. पारेख चम्पालाल—भावनगर ।
४४. कौशल्या देवी—अमृतसर ।

४५. समय सिंह—पीनना।
४६. विलायती राम—अम्बाला।
४७. रोशन लाल—सुल्तानपुर।
४८. अतल सिंह—काकडा।
४९. राम रतन—ग्वालियर।
५०. के० जी० रामशरण—जालौन।
५१. राम भरोसे—ग्वालियर।
५२. मन्नूमल—हसनपुर।
५३. चुन्नीलाल—कोठ।
५४. विजय शंकर—दिवौर।
५५. हरवंश लाल—बम्बई।
५६. किशोर कुमार—हसनपुर।
५७. राजन—माधोपुर।
५८. आर्य समाज—पोरबन्दर।
५९. रघुनाथ दास—हरगनपुर।
६०. डी० पी० व्यास—जलैया।
६१. लक्ष्मी चन्द—मंगलौर टाउन।
६२. जीत भाई—विसनगर।
६३. कप्तान सोमपाल—बरेली।
६४. Ram Luharimalu—भादरा।
६५. हरिओम—बरेली।
६६. ऋषिराम—पटियाला।
६७. सुभाष—पटियाला।
६८. करन लाल—आगरा।
६९. घनश्याम—माटे।
७०. आर्य स्टेशनरी—दिल्ली।
७१. एस० एम० खन्ना—टीकमगढ़।
७२. रघुराज—तम्बौर।
७३. शिशुपाल शास्त्री—दिल्ली।
७४. आशाराम—सिसौली।
७५. रामेश्वर—नवादा।
७६. रमेश चन्द—लाल साटे।
७७. शंकर लाल—कोटा।
७८. लोकमनी—कैमथल।
७९. पशु औषधालय—अचलपुर।
८०. जगदेव प्रसाद—देवरिया।
८१. एस० एम० उपाध्याय—हरदा।
८२. राम लाल—आमला।
८३. सुन्दर—नई दिल्ली।
८४. मन्त्री आर्य समाज—भाभा कोटा।
८५. बाल मित्र—कानपुर।
८६. राजकुमार—मुराद नगर।
८७. गोपाल दास—दिल्ली।
८८. गोवर्धन—व्यावर।
८९. सभापति—माडर।
९०. रामदास—बहराइच।
९१. रोहतास—उज्जैन।
९२. रामरेखा—मल्य कोली।
९३. तपेश्वर—गया।
९४. लक्ष्मी चन्द—गाजियाबाद।
९५. बेनी प्रसाद—झालू।
९६. कन्हैया लाल—बडहल गंज।
९७. शिव नन्दन—पेशौर।
९८. जयन्ती लाल—बम्बई।

□

## ११) देने वाले महानुभाव

**सर्वश्री**

१. आर० सी० शर्मा—बेहट।
२. कृष्ण मुरारी—कानपुर।
३. धन्नालाल—कोरगला।
४. सहदेव मण्डल—लिट्टी पाड़ा।
५. मथेतर लाल—अमरोहा।
६. नन्द लाल—मन्डी।
७. सोमपाल—बरेली।
८. पं० अम्बा लाल—झाबुआ।

९. सुन्दर लाल—कानपुर।
१०. नाथूराम—एटा।
११. भंवर सिंह—पेपर मिल।
१२. कर्मवीर—विसौली।
१३. श्याम सुन्दर—रानीगंज।
१४. शेर सिंह—बदायूं।
१५. रतन चन्द्र—जबलपुर।
१६. आर० के० अग्रवाल।
१७. राम जी मालवीय—बीना।
१८. इन्दीसिंह—अमेश्वरपुर।
१९. राजकुमारी—बुढ़ाना।
२०. रामप्रताप—हरदोई।
२१. बसन्त सिंह—बहादुराबाद।
२२. वेद मन्दिर—गोविन्दपुर।
२३. पशु पतिनाथ—प्रयागपुर।
२४. गोपाल जी—उदयपुर।
२५. जुगत दान—आरंग।
२६. भगवान स्वरूप—अलीगढ़।
२७. नारायन महावीर—शाहजहांपुर।
२८. पं० देवनन्दन मिश्र—चाकन्दगढ।
२९. महेन्द्र पाल वार्ष्णेय—हनुमना।
३०. बाबूराम आर्य—मेहसाना।
३१. पी० आर० टन्डन—मेहसाना।
३२. चन्द्र भान—नैनी।
३३. एम० नारायण—नान्देड़।
३४. देवदत्त—रायपुर।
३५. महाजन सैन्ट्रल स्टोर्स—जालन्धर।
३६. प्रमोद कुमार—झरिया।
३७. रमेश चन्द—बुलन्द शहर।
३८. जे० पी० गर्ग—गाजियाबाद।
३९. यशपाल पेन्टर—झज्जर।
४०. नैशनल शूगर इन्डस्ट्रीज—मेरठ।
४१. धर्म सिंह—हरदोई।
४२. महेन्द्र आयल मिल—हापुड़।
४३. मनोहर लाल—फिरोजपुर।
४४. छोटे लाल—मनरिका।
४५. ओमप्रकाश—करनाल।
४६. ओमप्रकाश—जयपुर।
४७. केशवचत्य—लकसर।
४८. जी० डी० अग्रवाल—कानपुर।
४९. लक्ष्मी इंडियन—देहरादून।
५०. सोखी लाल—मधुपुर।
५१. रामकिशोर—करनावर।
५२. नारायन बाजपेयी—रायबरेली।
५३. कैलाश—शाहजहांपुर।
५४. सुभाष चन्द्र—जम्मू तवी।
५५. राजेन्द्र प्रकाश—मवाना।
५६. डी० वी० अरोड़ा—चण्डीगढ़।
५७. एम० एल० कुशल—जम्मू तवी।
५८. पुरुषोत्तम—दयालपुर।
५९. घासीराम—आसनसोल।
६०. प्रधानाचार्य जनता इण्टर कालेज—फतेहाबाद।
६१. व्यवस्थापक वैदिक स्वाध्याय मन्दिर—महतवाड़ा।
६२. गंजाधर—रतलाम।
६३. वी० एस० अग्रवाल—चांस।
६४. हरी नारायन—ककरा टाउन।
६५. राणा जगन्नाथ—जूनामोंढ़ा।
६६. राणा राधा—जूना मोंढ़ा।
६७. कान्ति प्रसाद—विदिशा।
६८. घनश्याम दास—नई दिल्ली।
६९. अन्नू कुमार एण्ड कं०—उदयपुर।
७०. सी० एच० मीतवानी—अकोला।
७१. माता बदल चौधरी—गांधीनगर।
७२. बदरी लाल—इन्दौर।
७३. गोपी चन्द—भिवानी।
७४. रूपराम—कांसगंज।
७५. जगदीश—महतपाड़ा।
७६. रघुबर सिंह—एत्मादपुर।

| | |
|---|---|
| ७७. कौशल किशोर—पटना । | ८६. काशीराम—सहारनपुर । |
| ७८. अशोक कुमार—वेतिया । | ८७. प्रदीप—भोपाल । |
| ७६. हरी नारायन—खातेगांव । | ८८. राम रतन—सागर । |
| ८०. बनवारी लाल—कलकत्ता । | ८६. केदार नाथ—खंडवा । |
| ८१. आर० आर० सेकसरिया—बम्बई । | ६०. चन्द्रभान—हांसी । |
| ८२. कुवर वीरेन्द्र प्रताप—माल । | ६१. गोपाल कृष्ण—अम्बाला । |
| ८३. D.N. मेहता—नोहार । | ६२. काशी राम—जालन्धर । |
| ८४. लक्ष्मी—मुजफ्फर नगर । | ६३. लीलावती—दिल्ली । |
| ८५. लीलावती—नई दिल्ली । | ६४. बीरेन्द्र मोहन—शाहदरा । |

सभी को धन्यवाद है—**प्रबन्धक**

□

# "आर्य हमारा नाम था"

आर्यावर्त्त यह देश हमारा जग में स्वर्ग समान था ।
आर्य हमारा नाम था, आर्यावर्त महान था ॥

भारत को सोने की चिड़िया सारी दुनिया कहती थी ।
खुशहाली थी सभी जगह, घी, दूध की नदियां बहती थी ॥
जगद् गुरु थे हम और ऊंचा ज्ञान और विज्ञान था ।
आर्य हमारा नाम था आर्यावर्त महान था ॥

होते थे तब चार आश्रम सब जन पालन करते थे ।
ग्राहस्थ आश्रम में ही सन्तानोत्पादन करते थे ॥
ब्रह्मचर्य पच्चीस वर्ष तक रहता हर इंसान था ।
आर्य हमारा नाम था, आर्यावर्त महान था ॥
रामचन्द्र चारो भाई के दो-दो पुत्र महान हुए ।
एक-एक अर्जुन व कृष्ण के पुत्र महाबलवान हुए ॥
सुखमय था परिवार हमारा, लेकिन देश महान था ।
आर्य हमारा नाम था, आर्यावर्त महान था ॥

**—राम अवध त्रिपाठी "मीत"**

# दयानन्द-दर्शन—एक अध्ययन

लेखक—डा० श्रीनिवास शास्त्री

दयानन्द प्रोफ़ेसर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

प्रकाशक—कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

□ □ □

हरियाणा राज्य की प्ररणा से स्वामी दयानन्द की कृतियों तथा विचारों का अध्ययन करने के लिये १६७५ में संस्कृत विभाग के अन्तर्गत दयानन्द पीठ की स्थापना की गई। इस पीठ के अध्यक्ष पद पर डा० श्रीनिवास शास्त्री की नियुक्ति की गई जो पहले ही अनेक वर्षों से शोधकार्य में संलग्न हैं। उनके मार्गदर्शन में इस समय 'वेद और ऋषि दयानन्द' 'वेद प्रामण्म,' 'वेदोत्पत्ति,' 'वेदों की नित्यता,' 'यास्कीय निरुक्त और स्वामी दयानन्द' आदि अनेक विषयों पर शोधकार्य हो रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'दयानन्द दर्शन--एक अध्ययन' स्वयं आचार्य श्रीनिवास शास्त्री की रचना हैं जो उन के तद्विषयक गम्भीर अध्ययन एवं चिन्तन का परिणाम है। स्वामी जी ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत करने के लिये 'दर्शन' के नाम से किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना नहीं की। परन्तु उनकी दार्शनिक मान्यताओं का निर्देश उनके छोटे-बड़े सभी ग्रन्थों में अनेकतः मिलता है। उन सबको उपयुक्त शीर्षकों के अन्तर्गत एकत्र करके उनका क्रम बद्ध विवेचन करने से ही दयानन्द-दर्शन बनता है। इस प्रकार स्वामी जी के दार्शनिक मन्तव्यों का निरूपण करने के लिये हिन्दी में अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। उन सबकी अपनी २ शैली तथा विशेषतायें हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में, जैसा कि लेखक ने स्वयं लिखा हैं, दयानन्द के वचनों के आधार पर उनके मन्तव्यों को तटस्थ भाव से स्पष्ट करने, का प्रयास किया गया है। विश्वविद्यालय स्तर पर प्रस्तुत—इस प्रबन्ध का उद्देश्य 'दयानन्द के दार्शनिक मन्तव्यों को सरल भाषा में सरल किन्तु स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना, यथा सम्भव विरोधाभासों की संगति देखना. उनकी विशिष्ट दार्शनिक उद्भावनाओं का निर्देश करना और साथ ही इस सन्दर्भ में जिन विषयों पर अग्रिम शोध अपेक्षित हैं उनकी ओर संकेत करना है।' लेखक अपने उद्देश्य की सिद्धि में पूरी तरह सफल रहे हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ जन साधारण एवं विद्वानों के लिये समान रूप से उपादेय हैं। स्वामी जी की मान्यताओं का उपसंहार के रूप में सार संक्षेप इस ग्रन्थ की अतिरिक्त विशेषता है। लेखकों तथा प्रकाशकों के नाम पते सहित हिन्दी के लगभग २५० और अंग्रेज़ी के लगभग ७० सहायक ग्रन्थों की सूची अध्येताओं के लिये विशेष उपयोगी है। प्रत्येक पुस्तकालय में यह ग्रन्थ संग्रहणीय है। ●

# आर्य जगत् में प्रथम बार रचनात्मक महापर्व

□ □ □

विश्व की विभ्रान्त मानवता को सत्यपथ दर्शाने वाले देव दयानन्द के दिव्य प्रकाश से आज अग-जग आलोकित है। किन्तु इस युग प्रवर्तक को जिस महान साधक ने ज्ञान का पथ दर्शाया था, वह थे प्रज्ञाचक्षु गुरू विरजानन्द। उसी महान मनीषी की द्वितीय जन्म शताब्दी के अवसर पर मथुरा नगरी में तपोभूमि रजत जयन्ती समारोह का भी भव्य आयोजन श्री विरजानन्द वैदिक साधना श्रम, वेद मन्दिर (चमेली देवी गर्ल्स कालेज के सामने, वृन्दावन मार्ग, मथुरा) में ५ नवम्बर से ८ (नवम्बर कार्तिक शुक्ल ५ से ८, सम्वत् २०३५) तक किया गया। इस अवसर पर सार्वभौम वैदिक परिवार साधना शिविर भी आयोजित किया गया।

आज के समस्या ग्रस्त जगत् में समस्याओं का जो तान-वितान तना हुआ है, उसमें भी मानवता से युक्त मानव का अभाव। इस महान् दायित्व की पूर्ति भी देव दयानन्द के अनुयायियों को ही करनी होगी। वेद, यज्ञ और योग को आधार बनाकर मुख्यतया मण्डनात्मक (विधेयात्मक) पद्धति में परिवारों को साधना-स्थली मानकर वैदिक यज्ञों, वैदिक संस्कारों, वैदिक पर्वों, वेद कथाओं, वैदिक साहित्य एवं साधना शिविरों द्वारा ही मानव की युक्त मानवता को जगाना सम्भव है। सार्वभौमिक वैदिक परिवार संघ गत कई वर्षों से इस कार्य में संलग्न है। इस कार्य के लिए ऐसे प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को तैयार करने का प्रथम बार प्रयास किया जा रहा है कि जो आर्थिक दृष्टि से पूर्णतः निश्चिन्त हो।

यजुर्वेद पारायण विराट यज्ञ का शुभारम्भ ३१ अक्तूबर (महर्षि बलिदान पर्व) से हुआ है। ५ से ८ नवम्बर तक २५ कुण्डों पर २०० व्रती यजमान बैठे। व्रती यजमान के लिए यह आवश्यक नियम था कि वह कम से कम एक सप्ताह का ब्रह्मचर्य धारण करें।

इस समारोह के अवसर पर वैदिक प्रचारक संगोष्ठी, गुरू विरजानन्द जयन्ती एवं तपोभूमि जयन्ती के अतिरिक्त ५ से ८ नवम्बर तक हर रात्रि ७॥ से १० बजे तक क्रमशः राष्ट्र रक्षा सम्मेलन, चरित्र निर्माण सम्मेलन, वैदिक संस्कृति सम्मेलन एवं कवि सम्मेलन आयोजित हुए।

# बाल कथा

—वीरेन्द्र—

□ □ □

प्राचीन काल की बात है। जयस्थल-पुर के समीप एक ग्राम था। उसमें एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था, नाम था विष्णु स्वामी। उसने अपनी योग्यता के बल पर पर्याप्त धन तथा सम्मान कमाया था। उसके चार पुत्र थे।

विष्णु स्वामी की आयु अब ढलती जा रही थी, किन्तु वह निश्चिन्त था। ईश कृपा से वह पूर्णतः सुखी था। प्रातः उठता और नित्य कर्मकांड पूजा, पाठ, स्नान ध्यान में मग्न रहता था। उसे अपने पुत्रों से बड़ी आशाएं थी। वह चाहता था कि उसके पुत्र भी उसी के समान सुखी व सम्पन्न बनें, पुत्र ज्यों-ज्यों बड़े होते जा रहे थे, उसकी यह इच्छा बलवती होती जा रही थी, किन्तु दुर्भाग्यवश उसके पुत्र ज्यों-ज्यों यौवन की ओर बढ़ते जा रहे थे, त्यों-त्यों वे दुर्व्यसनों का शिकार बनते गए। पहला पुत्र जुआरी बन गया था तो दूसरा व्यभिचारी। जहां तीसरा पुत्र सुरापान का शौकीन हो गया, वहां चौथा अधर्मी और नास्तिक बनता जा रहा था!

विष्णु स्वामी पर्याप्त धन कमाने के बावजूद भी माया की चकाचौंध से सर्वथा मुक्त थे। किन्तु चारों पुत्रों ने तो पिता की कमाई को बेदर्दी से लुटाने को अपना धंधा बना लिया था।

जब विष्णु स्वामी को अपने पुत्रों की हरकतों का पता चला तो वह अत्यन्त निराश हुए। उन्होंने अपने पुत्रों को समझा-बुझाकर सद्मार्ग पर लाने का असफल प्रयास भी किया। हार कर विष्णु स्वामी ने अपने संचित धन को अपने चारों पुत्रों में बराबर-बराबर बांट दिया और उन्हें दुर्व्यसनों को त्याग कर अपना-अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करने की सीख भी दी। पिता का यह फैसला पुत्रों को एक अप्रत्याशित वरदान सा लगा। वे तो चाहते भी यही थे। उन्हें तो मुंह मांगी मुराद मिल गयी। पिता से मिले धन को उन्होंने पानी के समान बहाना और दोनों हाथों से लुटाना आरम्भ कर दिया। कुछ ही दिन बीते थे कि वे धनिकों के स्थान पर कंगाल बन गए।

अब जब उन्हें कोई सहारा न मिला तो पुनः अपने पिता के पास आए। किन्तु अब उसके पास धरा ही क्या था? पिता ने उन्हें समझाया-बुझाया और अपने आपको सुधारने का सद् परामर्श दिया। किन्तु उन्हें पिता का यह उपदेश न भाया और वे निराश होकर अपने पिता के यहां से चले गए।

यद्यपि उन्होंने अपने पिता से विदाई ले ली थी, किन्तु धन का मोह तो उन्हें अभी भी सता ही रहा था। चारों ने सोच-विचार किया और इस निर्णय पर पहुंचे कि किसी तीर्थ स्थान पर जाकर वहां किसी सम्पन्न साधु-सन्त की सेवा कर धनोपार्जन करने की कोई विद्या ग्रहण की जाए। मन में दृढ़ निश्चय कर वे चारों अपने घर से चल पड़े। चलते-चलते

वह एक तीर्थ स्थान पर जा पहुंचे और वहां उन्हें एक सन्त के दर्शन हुए । वे उस सन्त की योग शक्ति से इतने प्रभावित हुए कि पूर्ण निष्ठा सहित उसकी सेवा में लग गए । कुछ समय बाद वह सन्त भी उनकी सेवा भावना से पसीज गया और उसने उन्हें संजीवनी विद्या सिखा दी । अपनी इस उपलब्धि से पूर्णतः सन्तुष्ट होकर उन्होंने धन उपार्जन की लालसा को मन में संजोए अपने नगर के लिए प्रस्थान कर दिया ।

मार्ग में उन्होंने देखा कि एक स्थान पर कुछ हड्डियां पड़ी हुई हैं । बड़े पुत्र के मन में यह विचार आया कि क्यों न अपनी सिद्धि का परीक्षण कर लिया जाए । उसने अपने भाइयों से भी अपने मन में आयी यह बात कह दी । पहले पुत्र ने सारी अस्थियां एकत्रित कर एक मंत्र पढ़ा और उस पर पानी के छींटे दिए । वे सारी अस्थियां जुड़ गयीं । देखते ही देखते एक पशु कंकाल खड़ा हो गया । दूसरे पुत्र ने मंत्रोच्चार किया तो उस कंकाल पर मांस आदि आ गया । तीसरे ने सोचा कि वही पीछे क्यों रहे अतएव उसने भी एक मंत्र पढ़ा । उसके मंत्र पढ़ते ही उस पशु के शरीर पर बाल और खाल दोनों ही उग आई । चौथे ने सोचा कि वह भी अपनी मंत्र सिद्धि की परीक्षा लेने में पीछे क्यों रहे । अतएव उसने भी मंत्र पढ़ा और उस पशु में जो सिंह था जान पड़ गयी । फिर उसने अपना करतब दिखाकर इन चारों को ही ठिकाने लगा दिया ।

## शोक श्रद्धांजलि प्रस्ताव पारित

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश, आर्य उपप्रतिनिधि सभायें जनपद, मैनपुरी, आगरा, कानपुर, एटा, बटावा, फर्रुखाबाद, मेरठ, दिल्ली, मथुरा, अयोध्या, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, दैवीय सपंद मंडल, सनातन धर्म सभा, शिक्षा संस्थानों एवं विभिन्न स्थानों से पधारे आर्य जगत् के स्त्री, पुरुषों की यह असाधारण सभा आर्य जगत् के मूर्धन्य संन्यासी, वेद वेदांगों के प्रकाण्ड पंडित, दर्शनों के उद्भट विद्वान प्राचीन व्याकरण के महान ज्ञाता, आदर्श शिक्षा शास्त्री आर्ष पाठ विधि के अनुपम पोषक गुरुकुल स्नातकोत्तर महा विद्यालय सिरसा गंज के मुख्याधिष्ठाता महात्मा श्री देव स्वामी जी महाराज की नृशंस हत्या पर गहरा आक्रोश व्यक्त करती हुई परमात्मा से प्रार्थना करती है कि वह दिवंगत आत्मा को चिर शान्ति तथा शोक संतप्त गुरुकुल वासियों एवं परिवारी जनों को अटल धैर्य प्रदान करे । —**आर्य उप प्रतिनिधि सभा मैनपुरी**

'आर्य नव युवक संघ' हरफरी में "वेद सप्ताह" अत्यन्त उल्लास से मनाया गया । पूज्य पाद स्वामी "ब्रह्मानन्द जी वेद भिक्षु" द्वारा वेद सप्ताह का आयोजन सम्पन्न हुआ ।

## मुजफ्फरपुर आर्यसमाज

आचार्य सदानन्द शास्त्री महोपदेशक नियुक्त किये गये हैं । वैदिक विचारों पर आधारित इनके व्याख्यान आकर्षक होते हैं । जिला सभायें तथा प्रतिनिधि सभाएं इनकी सेवायें प्राप्त कर सकती हैं । ग्रामीण प्रचार में रुचि लेने वाले व्यक्ति बड़ी आसानी से ऐसा कर सकते हैं । इनके पुरोगम के लिए लिखें :—

**मंत्री, आर्य समाज मुजफ्फरपुर (बिहार)**

# राष्ट्रभाषा-समस्या

—डा० सुरेन्द्रदेव शास्त्री एम० ए०, पी० एच० डी०—

□ □ □

भारतवर्ष के परतन्त्र होने से पूर्वकाल तक इस देश अथवा राष्ट्र की भाषा सदैव एक रही और वह थी संस्कृत अथवा उसका कोई विकृतरूप। आज भी हमारे सभी भारतवासी एक स्वर से उसी अपनी प्राचीन भाषा "संस्कृत" को एक भाषा के रूप में स्वीकार करने हेतु उद्यत हैं, यह ठीक है। किन्तु जब हम वैदिक काल से लेकर आजतक के भाषा सम्बन्धी मान्यता के बारे में सोचते हैं तो इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि भारत की सम्पूर्ण भाषायें वस्तुतः संस्कृत की ही विकृतरूप हैं। प्राचीन वैदिक-काल में वैदिक-संस्कृत भाषा थी। यह सिद्धान्त सृष्टि के आदि से ही निरन्तर चरितार्थ होता चला आ रहा है कि जब कोई भाषा व्याकरण के नियमों के द्वारा निबद्ध कर दी जाती है तब वह भाषा साहित्यिक भाषा बन जाया करती है तथा बोल-चाल की भाषा उस भाषा से पृथक हो जाया करती है। इसके अनुसार जब वैदिक-संस्कृत साहित्यिक-भाषा के रूप में प्रयुक्त होने लगी तब उस समय बोल-चाल की भाषा संस्कृत रही। बाद में जब वैदिक-संस्कृत भाषा का समझना सर्वसाधारण के लिये कठिन हो गया तो उस समय सर्वसाधारण की बोल-चाल की भाषा संस्कृत को ही साहित्यिक रूप प्रदान किया गया और वह भी शनैः शनैः व्याकरण के नियमों में बंध गई। सिद्धान्तानुसार बोलचाल की भाषा पुनः पृथक हो गई। इसी क्रम से प्राकृत, दूसरी प्राकृत (अथवा पाली), अपभ्रंश आदि भाषायें पहले बोलचाल की भाषा के रूप में रहीं और क्रमशः उन उनमें साहित्य-सृजन हो जाने पर वे सभी भाषायें साहित्यिक भाषायें बन गई। जब से अपभ्रंश भाषा साहित्यिक रचनाओं का माध्यम बनीं तभी से हिन्दी भाषा की उत्पत्ति हुई क्योंकि अपभ्रंश भाषा जब साहित्य की भाषा बन गई उस समय हिन्दी साधारण बोलचाल की भाषा थी। इसके अनन्तर जब हिन्दी भाषा में साहित्य की रचना प्रारम्भ हो गई तो वह साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकार कर ली गयी।

## प्राचीन काल में

इस भांति हम देखते हैं कि प्राचीन वैदिककाल से लेकर आज तक भाषा सम्बन्धी परिवर्तन निरन्तर चलता रहा तथा बोलचाल के आधार पर शब्दों आदि में कुछ परिवर्तन भी होता रहा किन्तु लिपि में कोई अन्तर नहीं हुआ। जो लिपि प्राचीन

वैदिक काल में थी वही आज भी है क्योंकि संसार की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद इसी लिपि में हमें आज भी उपलब्ध होती है। इस लिपि के अतिरिक्त संस्कृत आदि उत्तर-कालीन भाषाओं के जो शब्द हैं प्रायः वे ही शब्द हिन्दी में भी अधिकांश रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं। साहित्य के आधार भी लगभग वे ही हैं। साथ ही संस्कृति सम्बन्धी सिद्धान्त भी प्राय: प्राचीन तथा एक हैं। अत: यह कहा जाना असंगत न होगा कि वैदिक काल से लेकर आज तक प्रयुक्त हुई सम्पूर्ण साहित्यिक भाषायें क्रमशः वैदिक-संस्कृत अथवा संस्कृत का विकृतरूप ही हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी को संस्कृत से असम्बद्ध एवं पृथक और स्वतन्त्र तथा नवीन भाषा के रूप में कहा जाना संभव नहीं है। फिर यदि हम उसे भी संस्कृत का क्रमिक विकृत रूप ही कहें तो यह अनुचित न होगा। अत: यदि संस्कृत आदि उत्तर कालीन भाषायें सम्पूर्ण भारत की भाषा के रूप में चलती चली आयी है तब आधुनिक काल में प्राप्त उसी के विकृत रूप हिन्दी-भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किये जाने में हमें आपत्ति क्यों है? यह महान् आश्चर्य और दु:ख की बात है।

यह भी प्रायः सर्वमान्य बात होगी कि जितना परिश्रम हम अंग्रेजी भाषा के सीखने तथा अध्ययन करने में करते हैं उसका यदि १।४ परिश्रम भी हिन्दी भाषा के सीखने तथा अध्ययन करने में किया जाय तो यह निश्चित है कि अंग्रेजी की अपेक्षा हमको हिन्दी भाषा के साहित्य का ज्ञान कहीं अधिक होगा। इसका प्रमुख कारण यह है कि हिन्दी भाषा में हम जो कुछ बोलते हैं वही लिखते भी हैं साथ ही भारत की प्राचीनतम भाषा का विकृत रूप होने के कारण हम भारतीयों के अन्दर उसका प्रभाव किसी न किसी अंश में विद्यमान है।

## प्राचीनतम लिपि

इसके अतिरिक्त यह कहा जाना अनुपयुक्त न होगा कि आज जिसे हम नागरी लिपि कहकर पुकारते हैं वह वस्तुतः संस्कृत की ही प्राचीनतम अपनी लिपि है तथा दक्षिण के जो लोग हिन्दी का विरोध कर रहे हैं वे भी संस्कृत का अध्ययन इसी लिपि के माध्यम से करते हैं। तब ऐसी स्थिति में यदि वे संस्कृत का अध्ययन अपनी रुचि से कर सकते हैं तो फिर हिन्दी का अध्ययन करना तो उनके लिए मात्र खेल ही होगा।

संसार में कोई भी ऐसा स्वतन्त्र राष्ट्र नहीं हैं कि जो अपनी एक राष्ट्रभाषा न रखता हो जब सभी स्वतन्त्र राष्ट्र अपनी एक राष्ट्र-भाषा स्वीकार करते हैं तब हम भारतवासियों को भी एक ही भाषा को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार करना उचित ही है। यह भाषा हिन्दी ही हो सकती है क्योंकि यह हमारी सर्वमान्य प्राचीन भाषा का विकृत रूप है साथ ही इस समय समस्त भारत में प्रचलित सभी भाषाओं में इसका ही साहित्य सर्वाधिक समृद्ध है तथा इसके बोलने वालों की संख्या भी सबसे अधिक है। भारतवर्ष का कोई ऐसा प्रान्त नहीं है कि जहां इसके समझने एवं जानने वाले किसी न किसी अंश में प्राप्त न हो जावें। स्थिति में इस भाषा के प्रति यदि

भारतीयों द्वारा उदासीनता का भाव प्रकट किया जावे तो यह बड़ी हास्यास्पद बात ही होगी।

यह एक विचारणीय बात है कि कोई व्यक्ति अपनी मां त्यागकर किसी अन्य की मां को अपनी मां के रूप में स्वीकार करे क्योंकि अपनी मां कैसी भी हो, उससे जो स्नेह उसके पुत्र को उपलब्ध होना संभव है वह स्नेह अन्य की मां से कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता है; यह एक नैसर्गिक सिद्धान्त है। हम सभी भारतवासियों को सोचना चाहिए कि अन्य देशवासियों की दृष्टि में हमारी क्या प्रतिष्ठा रह जायेगी यदि हम अपनी भाषा को त्यागकर किसी दूसरे देश की भाषा को अपनायेंगे।

## त्रिभाषा सूत्र क्यों ?

कुछ विद्वानों का यह विचार अवश्य है कि भारत में त्रिभाषा-सूत्र को लागू किया जाय। इन तीन भाषाओं में इंगलिश, हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषा का उल्लेख है। यहां यह बात समझ में नहीं आती कि इन तीन भाषाओं में आंग्लभाषा का उल्लेख क्यों है ? जब कि सैद्धान्तिक दृष्टि से उसका हमारे देश भारत से कोई सम्बन्ध नहीं। परतन्त्रता के समय हमने उसका अध्ययन विवशता में किया था। फिर स्वतन्त्र होने के पश्चात् उसका अध्ययन भारतीयों के लिये आवश्यक किया जाना एक अदूरदर्शिता की ही बात होगी। मैं किसी भी भाषा के अध्ययन का विरोधी नहीं हूं। किसी भी देशी अथवा विदेशी भाषा के अध्ययन द्वारा हमारी योग्यता में वृद्धि ही होगी और फिर ऐसी समृद्ध भाषा, कि जिसमें विश्व में प्रचलित ज्ञान-विज्ञान आदि सभी का ज्ञान प्रचुर मात्रा में विद्यमान हो, का पढ़ना तो और भी कल्याण कर ही होगा। किन्तु इसका अध्ययन ऐच्छिक विषय के रूप में निर्धारित किया जाना अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि फिर जो उसे पढ़ेगा वह अपनी रुचि से तथा योग्यता के साथ पढ़ने का प्रयास करेगा और उत्तम ज्ञान एवं योग्यता को प्राप्त कर देश का कुछ लाभ भी कर सकेगा। सभी भारतीय विद्यार्थियों पर आवश्यक विषय के रूप में लादे जाने से परिणाम विपरीत ही होगा। जैसे आज तक किसी भांति आवश्यक अंग्रेजी विषय में उत्तीर्ण होने के प्रयास में तत्पर अधिकांश भारतीय स्नातक आंग्लभाषा-साहित्य की न तो योग्यता ही प्राप्त कर सके हैं तथा न स्वतन्त्रता पूर्वक उसके लिखने में ही सशक्त हो पाये हैं—वैसे ही आगे आने वाले युग में इसका स्तर दिनों-दिन और भी गिरता ही जायेगा। तब ऐसे विषय को आवश्यक रूप में पढ़ाने से न तो स्वयं विद्यार्थी का अपना ही कुछ कल्याण होगा और न देश का ही। यदि वह इसके स्थान पर किसी दूसरे विषय का अध्ययन करेगा तो उससे उसे कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य होगा। ऐसी स्थिति में भाषाओं के आवश्यक अध्ययन की दृष्टि से दो भाषाओं का ही अध्ययन अधिक उपयुक्त एवं समीचीन जान पड़ता है—१. राष्ट्रभाषा-हिन्दी और दूसरी प्रान्तीय भाषा।

## अंग्रेजी का प्रकोप

आज से लगभग २०० वर्ष पूर्व से भी अधिक समय पूर्व कि जब हम परतन्त्र

थे, अंग्रेजी थोपे जाने का विरोध भारत में किया गया था [महाराष्ट्र-सरकार-अभिलेख-विभाग के श्री बी० एस० कामत ने पटियाला में हाल में आयोजित भारतीय-इतिहास-सम्मेलन में एक शोध-पत्र पढ़कर यह स्पष्ट किया कि आजकल भारत में जिस प्रकार की भाषा-समस्या चल रही है ठीक उसी प्रकार की आज से १०० वर्ष अधिक-काल पूर्व तत्कालीन बम्बई प्रेसीडेंन्सी में उस समय पैदा हुयी थी जब शिक्षा-मण्डल (एजुकेशन-बोर्ड) यह तय नहीं कर पा रहा था कि स्कूलों और कालेजों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा को बनाया जाय कि नहीं ?] फिर आज पूर्ण स्वतन्त्रता की उपलब्धि के पश्चात् यदि अंग्रेजी भाषा का आवश्यक अध्ययन हम पर थोपा जाय तो क्या यह अनुचित न होगा। अतएव अंग्रेजी का ऐच्छिक-अध्ययन ही भारतीयों के लिये उपयोगी तथा श्रेयस्कर होगा।

यह भी कहा जा सकता है कि संविधान में स्वीकृत अनेक अन्य साहित्यिक एवं प्रान्तीय भाषाओं में से किसी अन्य भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में क्यों स्वीकार न किया जाय ? यह ठीक है, हमें इसमें भी कोई आपत्ति न थी यदि संविधान का निर्माण होते समय हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में न स्वीकार किया गया होता। अखिल-भारतीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के माध्यम से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व से ही भारतीयों द्वारा स्वीकार किया जा चुका था। अतः उक्त आधारों पर हिन्दी भाषा को दिनों-दिन समृद्ध किया जाता रहा। केन्द्रीय सरकार द्वारा भी इसका शब्द भंडार समृद्ध किया गया। उनके द्वारा इस प्रकार की अनेक संस्थायें निर्माण की गईं तथा अनेक योग्य से योग्य व्यक्तियों को इसके शब्द-भंडार को समृद्ध करने का कार्यभार सौंपा गया। यह कार्य अब बहुत अधिक आगे बढ़ चुका है। फिर ऐसी समृद्ध भाषा का त्यागकर किसी अन्य प्रान्तीय भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया जाना सर्वथा अव्यावहारिक बात ही होगी।

हम सब का कर्तव्य है कि हम भाषा-समस्या के सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक विचार करें तथा हिन्दी के प्रति अपना स्वाभाविक स्नेह प्रगट करते हुये उसको स्वीकारें।

स्वस्थ और सुन्दर आंखों के लिए

भीमसेनी काजल

आंखों को नीरोग और सुन्दर बनाता है।

मुरारी ब्रदर्स

जी०-७, माडल टाऊन, दिल्ली-११०००७

# "गुरु-दक्षिणा"

—राधेश्याम 'आर्य'—

□ □ □

"कौन है ?"

"कौन है ?" किवाड़ खटखटा रहा है ? बोलते क्यों नहीं ?"

"महाराज ! यही तो मैं जानता नहीं कि मैं कौन हूं ? और इसी पिपासा की तृप्ति हेतु आपकी शरण में उपस्थित हूं।"

स्वामी विरजानन्द जी इस उत्तर को सुनकर स्तम्भित हो गये—'यह तो कोई महत प्रतिभाशाली नवयुवक का उत्तर है।' उन्होंने किवाड़ खोल दिया। समक्ष पैंतीस वर्ष का नवयुवक संन्यासी-वेश में खड़ा था, सुदृढ़ विशाल शरीर, देदीप्यमान ललाट, रोम-रोम में अखण्ड ब्रह्मचर्य की आभा प्रस्फुटित हो रही थी। हाथ में कुछ पुस्तकें थीं। संन्यासी ने स्वामी जी का चरण स्पर्श किया। आशीर्वाद प्राप्त किया। 'आप के चरण-तल में बैठकर विद्याध्ययन करने का उद्देश्य लेकर आया हूं महाराज।' संन्यासी ने कहा।

'बहुत अच्छा वत्स!' स्वामी विरजानन्द जी प्रसन्न मुद्रा में बोले—'मैं तुम्हें अवश्य शिक्षा प्रदान करूंगा।'

'आपकी महान् दया होगी ऋषिवर'

'वत्स ! इसमें दया की क्या बात हैं ? हमारा तो कार्य ही पठन-पाठन का है। अच्छा यह तो बताओ कि यहां रहते कहां हो।'

मैं यहां का निवासी नहीं हूं, महाराज विद्याध्ययन की प्यास बुझाने हेतु कई वर्षों से भटक रहा हूं। लेकिन अतृप्ति चिर-संगिनी बन गयी है।'

'तृप्ति मिलेगी पुत्र ! निष्ठा तथा परिश्रम सभी सफलताओं की कुंजी है। चिन्ता मत करो। तुम्हारे भोजन, दूध तथा आवास का प्रबन्ध हो जायेगा।'

'गुरुवर ! ···!'

'पुत्र ! तुमने आज तक क्या-क्या पढ़ा है ? व्याकरण आदि का भी कुछ ज्ञान है' 'जी हां···।"

'दयानन्द ! यदि तुम मुझसे शिक्षा प्राप्त करना ही चाहते हो तो मनुष्य कृत इन सभी आनार्ष ग्रन्थों को भूल जाओ। जब तक इन अनार्ष ग्रन्थों का परित्याग नहीं करोगे तब तक आर्ष ग्रन्थों का मर्म समझ में नहीं आएगा ! अतः इन ग्रन्थों को प्रथमतम् यमुना की धारा में प्रवाहित कर आओ।'

'आज्ञा स्वीकार है महाराज ! कह कर दयानन्द चल पड़ा यमुना की धारा में अपने संचित ग्रन्थों का विसर्जन करने के लिए।

आज दयानन्द का हृदय हर्षोन्मत्त था। उन्हें एक अलौकिक आनन्द का आभास हो रहा था। उन्हें विश्वास हो गया था कि स्वामी विरजानन्द जी के चरणतल में बैठकर वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होगी।

दयानन्द जी कालिन्दी के तीर गये। और अपने समस्त ग्रन्थों को यमुना जी के जल में समर्पित कर दिया। बड़ी प्रसन्न मुद्रा में पुनः गुरु जी के समक्ष उपस्थित हुए।

सन् १८२४ ई०। गुजरात के टंकारा नामक ग्राम में बालक मूलशंकर का जन्म हुआ था। वास्तविक शिव की प्राप्ति हेतु २०वर्ष की आयु में उसने गृहत्याग किया। साधुवेश में तीर्थाटन करता रहा। पर वह मूलशंकर, मूलशंकर को न प्राप्त कर पाया था। हजारों मन्दिरों का दरवाजा खटखटाया। हजारों साधुओं तथा सन्यासियों की शरण का अभ्यर्थी बना। विभिन्न तीर्थस्थलों पर गया। लेकिन सब व्यर्थ। वास्तविक शिव को प्राप्त करने की जिज्ञासा शांत न हो सकी। सत्य के स्थान पर धार्मिक स्थलों पर उसे मिला केवल-काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तथा मत्सर का अट्टहास तथा अज्ञान और अन्धकार।

पर सत्य की खोज का व्रत मलीन न हुआ। व्रत दृढ़ से दृढ़तर होता गया। मूलशंकर हिमालय की गुफाओं में भूखा नंगा और प्यासा रह कर भी अपनी खोज में संलग्न रहा। विकट परिस्थितियों में भी उसका साहस न टूटा। लेकिन गिरिराज उस नरयुवक को शांति व सत्य न प्रदान कर सका। वह दक्षिण भारत गया। यहां पर नर्मदा व ताप्ती घाटी के भयावह जंगलों में तीन वर्ष तक भटकता रहा। इसी समय मूलशंकर ने संन्यासाश्रम में प्रवेश किया और स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से विख्यात हुआ। यह समय देश के लिए विकट संकट का समय था। स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम जोरों से चल रहा था। दयानन्द जी ने गुप्त रूप से क्रान्तिकारियों के लिए हथियार व अस्त्र शस्त्र की व्यवस्था का भार अपने ऊपर बहन किया। संग्राम समाप्त होने पर स्वामी दयानन्द जी पुनः अपनी खोज में सलंग्न हो गए। लेकिन सफलता अभी उनसे कुछ दूर थी। नर्मदा--किनारे उन्होंने स्वामी विरजानन्द की प्रतिभा का वर्णन सुना और उनसे विद्याध्ययन की भावना लेकर उत्तर भारत की ओर चल पड़े। वे मथुरा पहुंचे और स्वामी विरजानन्द जी के आश्रम का दरवाजा खटखटाया।

स्वामी विरजानन्द जी ने दयानन्द को वेदों का अध्ययन कराना शुरू किया। दयानन्द की विलक्षण प्रतिमा पर मुग्ध होकर प्रज्ञायक्षु विरजानन्द जी ने अपनी समस्त ज्ञान की गंगा-धारा-दयानन्द के मस्तिष्क सागर में उड़ेल दिया। दयानन्द को पढ़ाते समय गुरु जी को विशेष आनन्द की अनुभूति होती थी। दयानन्द अध्ययन करते समय गुरु जी पर प्रश्नों तथा तर्कों की झड़ी लगा देते थे। दयानन्द जी अपने गुरु की बड़ी सेवा भी करते थे प्रतिदिन प्रातः ४ बजे, चाहे कड़ाके की सर्दी हो अथवा घनघोर जल वृष्टि गुरु जी के स्नान के लिए यमुना से पानी भर कर लाते। आश्रम में झाड़ू लगाते। एक बार की बात है, झाड़ू लगाकर दयानन्द ने कूड़ा एक कोने में इकट्ठा कर दिया। और उसे हटाने को भूल गये। स्वामी जी का

पैर कूड़े पर पड़ा। वे दयानन्द से बहुत नाराज हुए। और दयानन्द के हाथ पर एक डण्डा जमाया। भुजा में घाव हो गया। लेकिन दयानन्द के हृदय में गुरु भक्ति और अधिक प्रगाढ़ हो गयी। उस घाव के चिन्ह को वे आजीवन गुरु प्रसाद मानते रहे। दयानन्द जी का भौतिक जीवन बड़ा ही कष्टमय था। जिस कमरे में रहते थे, वह इतना छोटा था कि पैर भी पूरा नहीं पसार सकते थे। दयानन्द जी ने कभी किसी लड़की की ओर आंख उठाकर नहीं देखा। इस स्वभाव ने मथुरा-वासियों को बहुत प्रभावित किया। गुरु जी के पास दयानन्द जी ने लगभग तीन वर्ष तक अध्ययन किया। जगत् आत्मा-परमात्मा अदि गूढ़ विषयों में उनका अध्ययन पूर्ण हो गया। जिस आकांक्षा ने उन्हें गृह त्याग करवाया था, वह स्वामी विरजानन्द के चरणों में तृप्ति प्राप्त कर सकी।

विद्याध्ययन समाप्त होने के पश्चात् दयानन्द जी ने स्वामी जी से देशाटन की अनुमति मांगी, और गुरु दक्षिणा के रूप में थोड़ी सी लौंग लेकर स्वामी जी के समक्ष उपस्थित हुए—'गुरुवर ! आपने तो ज्ञान प्रदान किया है, उसके लिए मैं जन्म-जन्मान्तर आपका ऋणी रहूंगा। अब मैं देशाटन हेतु जाना चाहता हूं। यह थोड़ी सी लौंग गुरु-दक्षिणा के रूप में स्वीकार करने की कृपा करें।'

"दयानन्द ! ···" स्वामी जी का कंठ भर आया—"मैं गुरु दक्षिणा में तुमसे लौंग नहीं बल्कि कुछ और ही चाहता हूं।"

"और हमारे पास है क्या ? देव !"

'वत्स ! जो मैं चाहता हूं वह वस्तु तुम्हारे पास है।'

'मैं अपना सर्वस्व प्राण-पण से अर्पित करने को तत्पर हूं, गुरुवर ! आप आज्ञा दें।'

स्वामी विरजानन्द ने दयानन्द के मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा—'दयानन्द ! आज मैं एक महान् गुरु दक्षिणा का भार तुम्हारे कन्धों पर छोड़ रहा हूं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम गुरु भार का वहन करने में समर्थ हो और करोगे भी। वत्स ! आज हमारा देश वेद-पथ भूल कर पतन और पराजय की सीमा का उल्लंघन कर रहा है। भारत के कोटि-कोटि जन अत्याचारों, पाखण्डों, अन्धविश्वासों की चक्की में पिसते हुए कराह रहे हैं। गौरव गरिमा वाली भारत की दिव्य वसुन्धरा विदेशी दासता के बन्धन में जकड़ी हुई है। जिस भारत की पावन वाटिका में वेद ऋचाओं की स्वर लहरियां गूंजा करती थीं, उसी देश में अधर्म का ताण्डव नर्तन हो रहा है। भारत में मानवता का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। वास्तविकता से परे विभिन्न प्रकार के मत-मतान्तर फैल कर देश में विषमता, ईर्ष्या-द्वेष का जाल बिछा दिये हैं। दयानन्द सुनो ! भारत माता आर्तनाद कर रही है ! मैं चाहता हूं कि तुम जाओ और भारत ही नहीं, समग्र संसार को वेद भानु की किरणों से प्रकाशित करो। पथ विचलित मानवता को सन्मार्ग पर लाओ। मानव-अन्तः करण में धर्म का वास्तविक स्वरूप प्रतिष्ठापित करो। देश में एक नए वातावरण का निर्माण करो। सोती हुई मातृभूमि तथा मानवता को जगाओ।

'आज्ञा शिरोधार्य है गुरुवर ! यदि प्राण देकर भी हो सका तो मैं जननी जन्म-भूमि पर फैली हुई दानवता का संहार कर गुरु ऋण से उऋण होऊंगा।'

आशीर्वाद वत्स ! 'जाओ तुम्हें भगवान सफलता प्रदान करें।'

गुरु जी के चरणों का स्पर्श कर और आशीर्वाद प्राप्त कर निकल पड़े दयानन्द जी गुरु दक्षिणा का ऋण चुकाने के लिये समस्त राष्ट्र का भ्रमण कर उन्होंने भारत की सोती हुई आत्मा को जगाया और गुरु दक्षिणा के ऋण की बलिवेदी पर अपने प्राण समर्पित कर दिये।

# उपयोगी सुझाव

—कमल

रद्दी अखबार चूल्हे में मत जलाइये यह घर-गृहस्थी के तमाम कार्यों में उपयोगी हैं, यदि आप अपने गलीचे को लम्बे अरसे तक चलाना चाहते हैं तो पहले फर्श पर अखबार की तहें बिछाइए फिर उनके ऊपर गलीचा, ऐसा करने से गलीचे की आयु बढ़ जायेगी।

—सफेद ऊन से बुनाई करते समय अक्सर ऊन मैली हो जाती है, अतः सफेद ऊन से बुनाई करते समय अपने हाथों तथा सलाइयों पर जरा-सा टलकम पाउडर छिड़क लें इससे पसीने आदि के कारण ऊन मैली नहीं हो पायेगी।

—पुरानी ऊन को धोना हो तो पानी में एक छोटा चम्मच ग्लीसरीन मिला लीजिये, इससे ऊन सिकुड़ेगी नहीं।

—बिजली के प्लग यदि सुगमता से न लगें तो तनिक सी वैसलीन चुपड़ दीजिये, दिक्कत दूर हो जायेगी।

—फिटकरी गर्म पानी में घोल कर चारपाई पर इसका छिड़काव करें इससे खटमल नहीं होंगे।

—नीम की ताजा पत्तियां सुबह सवेरे चबाने से खून की सब बीमारियां जैसे खुजली, फोड़ा-फुंसी, दाद इत्यादि ठीक हो जाते हैं।

—नींबू के रस को मुंह पर मलना चाहिए। इससे मुहासों के निशान ठीक हो जाते हैं।

## अजवाइन के विविध उपयोग

मधु के साथ अजवाइन सेवन करने से सर्वांग पीड़ा एवं शोथ रोग जाता रहता है। अजवाइन का काढ़ा छाती दर्द, यकृत, पिल्ही, हिचकी, वमन, मिचली, खट्टी डकार आना, पेट की गुड़गुड़ाहट, मूत्र विकार एवं पथरी रोगों का विनाशक है।

वातशूल के शमनार्थ 'यमान्यादिचूर्ण को बड़ा प्रशस्त माना गया है :—

किसी रोग के उपद्रव अथवा स्वतः उदर विकार से पेट में अफड़ा होने पर 'अजवाइन' की गठरी बनाकर आग से सेंकने पर लोगों की प्राण-रक्षा की जा सकती है। उदर विकार एवं कृमि रोग में 'अजवाइन' अर्क बड़ा गुणकारी माना गया है।

'अजवाइन' के योग से 'अमृत धारा' नामक दवाई बनायी गयी है जो हैजा, पेट दर्द, छाती दर्द, दांत दर्द, सिर दर्द आदि अनेक दर्दों में व्यवहार करने से चमत्कारी लाभ दिखलाती है।

ऐसी स्त्रियों के लिए जिन्हें मासिक साफ नहीं होता, जिससे उन्हें प्रदर, आंख की खराबी, सिर दर्द, कमर दर्द आदि कितने उपद्रव घर दबाते हैं, उन रोगों में 'यमान्यादि चूर्ण' बड़ा लाभकारी सिद्ध होता है, इसमें मासिक धर्म सम्बन्धी रुकावट दूर होकर सभी विकार जाते रहते हैं।

जुकाम जिसमें नाक से पानी गिरता है, 'अजवाइन' के चूर्ण को स्वच्छ पतले कपड़े में बांध कर सूंघने से जुकाम का वेग जाता रहता है।

'अजवाइन' को पानी के साथ पीस कर दिन में दो बार लेप करने से दाद, खुजली आदि चर्म रोग एवं आग से जले स्थान पर बड़ा लाभ करता है, 'अजवाइन का तेल' भी इन रोगों के शमनार्थ बड़ा उपयोगी है।

अजवाइन के योग से निर्मित 'वाचादि चूर्ण' के नियमित रूप से सेवन करने से 'शूल' उदर सम्बन्धी अन्य विकार एवं गुप्त रोग हो जाते ही रहते हैं, साथ ही रोगी की जीवनी शक्ति भी जागृत होती है।

—नागेश्वर सिंह

# जातिवाद : समस्या समाधान !

—लक्ष्मीदत्त दीक्षित—

□ □□

मानव जाति और उसकी सामाजिक व्यवस्थाओं के कुछ मौलिक लक्षण होते हैं जो उसकी संस्कृति को उसका रूप और वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। किसी ऐतिहासिक संस्कृति की बात करने का अर्थ है उसे जीवित रखने वाले मूल्यों और विश्वासों की बात करना, उसके सामाजिक ढांचे का निर्धारण करने वाले तत्त्वों की बात करना। भारतीय संस्कृति एक लम्बी एवं वैविध्यपूर्ण परम्परा है—दर्शन और धर्म, कला और साहित्य, विज्ञान और मानव विज्ञान के क्षेत्रों में एक महान् प्रयास है।

भारतीय अथवा वैदिक संस्कृति का आधार वर्णाश्रम व्यवस्था है और वर्णाश्रम व्यवस्था का आधार है भोग एवं त्याग और व्यष्टि एवं समष्टि के समन्वय से मुक्त उसकी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि।

कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञ अथवा सर्वशक्तिमान् नहीं है। हर किसी का सामर्थ्य सीमित है। अतः वह अपनी सारी शक्तियों को एक स्थान पर केन्द्रित करके किसी एक दिशा में लगा देना चाहता है। प्रारम्भिक कक्षाओं में विद्यार्थी अनेक विषयों का सामान्य ज्ञान प्राप्त करता है। क्रमशः विषयों की संख्या घटती जाती है और अन्ततः वह अपनी प्रवृत्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार कोई एक विषय छांट लेता है और उसमें कौशल प्राप्त करने—Specialise करने के लिए अपने आप को सर्वात्मना उसी के लिए समर्पित कर देता है। यह Specialisation ही वर्ण व्यवस्था का मूल है। पूर्व-जन्म के संस्कार, पैतृक संस्कार एवं प्रेरणा, पारिवारिक तथा सामाजिक परिवेश, वातावरण एवं निजी पुरुषार्थ सब मिलकर उसे कार्य विशेष में प्रवृत्त कर देते हैं। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था अपनी-अपनी योग्यता, रुचि और सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य निश्चित कर देती है।

वेद ने किसी के साथ पक्षपात नहीं किया। 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' कहकर यही बताया है कि किसी भी समाज में ज्ञानियों (Intellectuals & Thinkers) का स्थान सर्वोपरि होता है। प्रकृत्ति ने भी ज्ञानशक्ति प्रधान शिर को शरीर में सबसे ऊपर रखा है। वह सदा ही ऊंचा रहता है, यदि हम सब अंगों को एक सीध से लिटाना चाहें तो भी तकिया लगाकर सिर को कुछ ऊंचा कर देना पड़ता है। नहीं तो शरीर को चैन नहीं मिलेगा। यथास्थान सभी अंगों का अपना-अपना स्थान है। इसमें राग द्वेष की बात नहीं है। एक व्यवस्था है जिसमें रहते हुए सब अपना-अपना काम करते

हैं। संसार में कौन सा ऐसा देश या समाज है जहां इस प्रकार का वर्गीकरण नहीं है। इतना ही अन्तर है कि वैश्य को Business Community, शूद्र को Labour Class, क्षत्रिय को Military या Administration, और ब्राह्मण को Intellectuals Intelligentsia आदि नाम दे दिये गये हैं।

वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, दर्शनों, रामायण और महाभारत आदि द्वारा प्रतिपादित और मनु, याज्ञवल्क्य, गौतम, कपिल, कणाद, व्यास और बाल्मीकि आदि ब्रह्मा से लेकर दयानन्द पर्यन्त ऋषियों द्वारा अनुमोदित गुण-कर्म-स्वभाव पर आश्रित वर्ण-व्यवस्था को मात्र धोखा कहना अनर्गल प्रलाप होगा और वास्तविकता को न समझकर अपने आपको और दुनिया को धोखा देना होगा। आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक सभी दृष्टियों से निर्दोष इस व्यवस्था में वर्तमान में कोई दोष दिखाई देते हैं या उसमें अव्यावहारिकता का आभास होता है तो वह व्यवस्था की शिथिलता वा उसके ठीक पालन न होने के कारण है। शास्त्रीय विधान में कोई दोष नहीं है। आज जहां देखो भ्रष्टाचार फैला है, चारों ओर हिंसा का साम्राज्य है, लूटमार का बाजार गर्म है, सच्चाई ढूंढ़ने पर भी नहीं मिल पाती, चरित्र का दिवाला निकल गया है। किन्तु सदाचार, ईमानदारी, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि के व्यवहार में न होने पर भी क्या कोई इन्हें अव्यावहारिक कहकर इनकी अच्छाई से इन्कार कर सकता है ?

यह ठीक है कि जहां एक ओर जन्म या अवसरों की कमी के कारण अनेक व्यक्तियों को कठोर परिश्रम, मन्त्रणा और अभाव का जीवन बिताना पड़ता है वहां दूसरी ओर अनेक व्यक्ति किसी प्रकार की योग्यता न रखते हुए भी सब प्रकार की सुख सुविधाओं का जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु इन विषमताओं के लिये वर्ण व्यवस्था को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यदि ऐसा होता तो 'कारणाभावात्कार्याभाव:' के न्याय के अनुसार अन्यान्य देशों में जहां हमारे ढंग की वर्णव्यवस्था को कोई जानता तक नहीं ऊंच नीच की भावना या वर्ग भेद नहीं होना चाहिये था। क्या दक्षिणी अफ्रीका में रंग भेद के लिए वर्णव्यवस्था जिम्मेदार है ? क्या हिटलर द्वारा यहूदियों पर और जार द्वारा रूस की जनता पर हुए अमानुषिक अत्याचारों तथा अमरीका में प्रचलित दास प्रथा और आज भी नीग्रो लोगों के प्रति हो रहे दुर्व्यवहार के लिए वर्णव्यवस्था दोषी है ?

यदि जाटों और राजपूतों, मराठों और सिखों या गूजरों और ब्राह्मणों ने मिलकर शत्रुओं से लोहा नहीं लिया तो इसका दोष वर्णव्यवस्था के सिर मढ़ना सरासर नासमझी है। इसमें सदा कुछ व्यक्तियों का अहम् बाधक बना है। जहां तक शास्त्रीय व्यवस्था का सम्बन्ध है शास्त्र ने तो यहां तक कह दिया है कि—

"शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते।"

अर्थात् जहां धर्म या संस्कृति को खतरा हो वहां ब्राह्मणादि सब वर्णों को शस्त्र ग्रहण कर लेना चाहिये।

आर्यसमाज इस दिशा में सदा प्रयत्नशील रहा है। श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त द्वारा पास कराया Arya Marriage Validation Act इसी दिशा में एक

आवश्यक कदम था। आर्यसमाज के बढ़ते हुए कदम रोक दिये राजनीति ने। वर्तमान में इस पहले से ही काफी मुश्किल काम में राजनैतिक स्वार्थ आड़े आ रहे हैं। आरक्षण, विशेषाधिकार, अल्पसंख्यक आयोग आदि के नाम पर देश भर में अलगाव व संघर्ष की प्रवृत्ति जैसी अब पनप रही है वैसी पहले कभी देखने सुनने में नहीं आई। जिन्हें उनके गुण-कर्म-स्वभाव के कारण सब कोई ब्राह्मणादि समझते थे वे हाथ उठा-उठाकर अपने हरिजन होने की घोषणा कर रहे हैं। तात्कालिक स्वार्थ लाभ के कारण साम्प्रदायिक संगठनों के गठबन्धनों के कारण साम्प्रदायिक विद्वेष को बढ़ावा मिल रहा है। और यह सब कुछ जन्ममूलक जात पात के आधार पर हो रहा है। कालान्तर में इसका क्या रूप बन जायेगा और तब इसका निराकरण कितना कठिन होगा इसका ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत है।

आज से लगभग सौ वर्ष पहले अंग्रेजों की Divide and Rule की नीति के अधीन Cambridge History of India में एक बात लिख दी गई कि "इस देश में पहले कुछ लोग बसते थे। कालान्तर में ईरान आदि देशों से आकर कुछ लोगों ने इस पर आक्रमण किया और यहां के मूल निवासियों को पराजित कर उन्हें दक्षिण की ओर खदेड़ कर इस देश के मालिक बन बैठे।" यहां के मूल निवासियों को आदिवासी, द्रविड़ आदि नाम देकर बाहर से आने वालों को आर्य कह दिया और तरह-तरह से उनमें भेद उत्पन्न कर दिये। इस मान्यता को योजनाबद्ध रूप में प्रसारित करने के लिए बनारस में संस्कृत कालिज के प्रिंसिपल के पद पर टी० एच० ग्रिफिथ को और लाहौर में ओरियण्टल कालिज के प्रिंसिपल के पद पर ए० सी० वुलनर को नियुक्त किया गया। इसका निराकरण करने के लिए सन् १८७५ में महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा कि आर्य लोग इसी देश के मूल निवासी हैं। उनके बाहर से आकर यहां बसने की बात हमारे ग्रन्थों में कहीं नहीं है। विदेशियों के कहने मात्र से ऐसा नहीं माना जा सकता। किन्तु किसी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। लोकमान्य तिलक जैसे महान् देश भक्त भी इस भुलावे में आ गये। आज भारत की छोटी से छोटी पाठशाला से लेकर बड़ी से बड़ी यूनिवर्सिटी तक में यही पढ़ाया जाता है जो Cambidge History of India में लिख दिया गया था। परिणामतः उत्तर-दक्षिण के नाम पर जो कुछ हो रहा है वह सबके सामने है। पाकिस्तान की तरह द्रविड़स्तान की मांग हो रही है। तमिलनाडू में राम के गले में जूतों के हार डालकर सरे बाजार झाड़ुओं से मार-मारकर जलूस निकाल रहे हैं। संस्कृत को विदेशी भाषा कहकर संविधान में से निकालने को कहा जा रहा है। संसद में उपग्रह का नाम 'आर्य भट्ट' विदेशी मानकर उसे बदलने की आवाज उठाई जा रही है। इन सब बातों की चर्चा करने के लिये मैंने इसी मास की ४ तारीख को केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री श्री प्रताप चन्द्र से भेंट की। अन्य बातों के साथ मैंने उन्हें हिन्दुस्तान टाइम्स के ३१ अक्तूबर १९७७ के अंक में प्रकाशित यह रिपोर्ट पढ़कर सुनाई—

"New Delhi, Oct. 30—There is no conclusive evidence of Aryan immigration into India from outside, according to Indian Historians,

Linguists and Archaeologists who participated in the recent International Seminar at Dushambe, the Capital of the Soviet Republic of Tadjikistan. Dr. N.R. Banerjee, Director of National Museum and a member the Indian delegation told Samachar here today thatIndian Historians made out this point at the Seminar and papers presented by them were very much appreciated. It was pointed out by the Indian Scholars that the Archaeological material associated with the Aryans in different periods and regious in India did not show any clear links with the Archaeological survivals of the Aryans in Iran, Afghanistan and Central Asia."

यह सब सुनाने के बाद मैंने श्री चन्द्र से अनुरोध किया कि जब भारत सरकार द्वारा नियुक्त इतिहासविदों, भाषाशास्त्रियों तथा पुरातत्त्व-वेत्ताओं के डेलीगेशन ने एक स्वर से घोषणा कर दी कि आर्य लोग इसी देश के रहने वाले हैं तो उनके विदेश से आकर यहां बसने की मिथ्या कल्पना को दूर करने का भारत सरकार द्वारा यत्न होना चाहिए। श्री चन्द्र ने स्पष्ट कह दिया कि भारत सरकार इस पर विचार तक नहीं करेगी। जब १०० वर्ष पूर्व प्रचारित एक मिथ्या कल्पना की यह स्थिति है तो सदियों से चली आ रही वर्णाश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में उत्पन्न धारणाओं को दूर करने में समय तो लगेगा ही। किन्तु रोगी शरीर की चिकित्सा न करके उसे नष्ट कर देना बुद्धिमत्ता नहीं है।

उसे सभा कैसे कहा जाए जिसमें गुरुजनों का सहयोग न हो ?
उन्हें गुरुजन कैसे कहा जाए जिन्हें धर्म का ज्ञान न हो ?
उसे धर्म कैसे कहा जाए जिसमें सत्य की प्रतिष्ठा न हो ?
उसे सत्य कैसे कहा जाए जिसमें निपट निर्मलता न हो ?
उसे निर्मलता कैसे कहा जाए जो सुकर्म पर आधारित न हो ?
उसे सुकर्म कैसे कहा जाए जिसमें करुणा की प्रेरणा न हो ?
उसे करुणा कैसे कहा जाए जिसमें पीड़ा की आंसू न हो ?

—महर्षि बाल्मीकि

# जातिवाद और अंधविश्वास समाप्त किए जाएं

—केदारनाथ साहनी—

□ □ □

नई दिल्ली—देश की उन्नति के लिए आवश्यक है कि बढ़ता हुआ जातिवाद और रूढ़ियां समाप्त की जाएं—इन शब्दों के साथ दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद श्री केदार नाथ साहनी ने 'वैदिक समाज व्यवस्था' नामक ग्रन्थ का विमोचन करते हुए कहा कि गत २०० वर्षों में महर्षि दयानन्द ही ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होंने मनुष्य को सर्वांगीण उन्नति का मार्ग बताया। अत: आज की आवश्यकता है कि हम पूरे बल से देश में फैल रहे अंध विश्वासों और अज्ञान को समाप्त करने का संकल्प लें।

समारोह के अध्यक्ष स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने कहा कि आज शिक्षा के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। बुद्धिजीवी वर्ग का ध्यान समस्याओं की ओर आकर्षित कर श्री प्रशान्त वेदालंकार सदस्य महानगर परिषद ने सराहनीय कार्य किया है।

भूतपूर्व संसद सदस्य श्री पं० शिवकुमार शास्त्री ने कहा कि देश को समाज निर्माण की नयी दिशा सूझ-बूझ के साथ बनानी चाहिए।

प्रिंसिपल लक्ष्मीदत्त दीक्षित ने आर्य-द्रविड़ समस्या पर अपना निबंध प्रस्तुत कर देश की एकता के लिए उपयोगी सुझाव दिए।

दयानन्द संस्थान के आचार्य स्वामी जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती ने श्री केदार नाथ साहनी का स्वागत किया। पं० भारतेन्द्र नाथ ने संस्थान का संक्षिप्त परिचय देते हुए बताया कि संस्थान बाढ़ से नष्ट होने के बाद भी नए सिरे से प्रचार कार्यों में लग गया है। संस्थान की अध्यक्ष पंडिता राकेश रानी ने सभी का धन्यवाद किया।

इस अवसर पर पं० क्षितीश कुमार वेदालंकार लिखित 'ईश्वर' श्रीमती ज्योत्स्ना लिखित, 'महर्षि दयानन्द परक हिन्दी के महाकाव्य' पुस्तकें भी श्री केदार नाथ साहनी को भेंट में दी गयीं।

—

## शोक समाचार

अत्यधिक शोक के साथ सूचनीय है कि श्री रवीन्द्र नाथ अग्निहोत्री (छुट्टन) का असामयिक निधन दिनांक १४ दिसंबर १९७८ को हो गया है। हम दिवंगत परिवार के इस दुःख में समवेदना प्रकट करते हैं

—सम्पादक

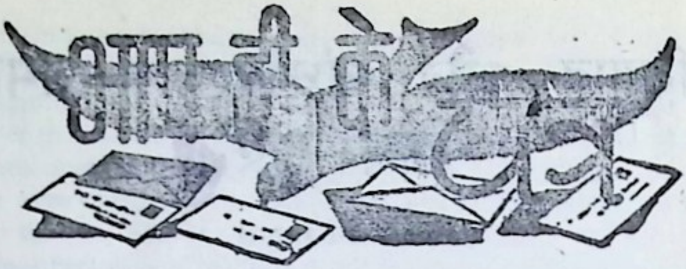


प्रिय बहिन राकेश रानी जी, स्नेहभरी नमस्तें ।

आपके द्वारा भेजे हुये दोनों 'जन-ज्ञान' प्राप्त हुये और इनके पढ़ने के बाद वेद मंदिर का सारा हालचाल ज्ञात हुआ । सचमुच आपने जीवन भर ऋषि के लिये अपना जीवन दिया, अपना सर्वस्व अर्पण किया और एकदम से प्रभु ने यह भीषण वज्रपात किया । आपकी यह अग्नि परीक्षा है । आप जैसे जीवनदान करने वाले आदमी आज आर्य समाज के पास नहीं है । आपका सारा परिवार ऋषि के महान सन्देश के देने में लगा हुआ है । आपका परिवार धन्य है, आप धन्य हैं जिन्होंने अपनी भर जवानी ऋषि के चरणों में अर्पित की है । कोई भी महान कार्य करने वाले को जीवन बलिदान करना पड़ता है । आपका यह कर्तव्य एक दिन यह रंग लायेगा कि दुनिया आपने जो महान कार्य आरम्भ किया इसको आगे चलायेगी, आप आज भी अपने संकल्प पर दृढ़ हैं । आपको अपने जीवन में अधिक से अधिक सफलता मिलेगी । मुझे पूरा विश्वास है आपको और भी अधिक सहयोग मिलेगा । आपकी साधना सफलीभूत होगी । आपने ऋषि के सम्बन्ध में जो कर्तव्य किया है वह आज तक आर्य समाज भी नहीं दे सका है । आर्य समाज भी पद की तृष्णा में लिप्त है । उसे अपने धर्म व संस्कृति से कुछ मतलब नहीं—भगवान आपको और हमारे भाई भारतेन्द्र नाथ जी को शतायु करे और उन्हें अधिक से अधिक प्रेरणा दे यही मेरी हार्दिक मनोकामना है ।

नागपुर — अन्त में मंगलकामनाओं के साथ आपकी ही

—चन्द्रकान्ता विद्यालंकृता

मान्यवर महोदय ! नमस्ते

विगत माह में "जन-ज्ञान" के माध्यम से एक सूचना प्राप्त हुई कि आप "शतपथ ब्राह्मण" का प्रकाशन करने वाले हैं । मुझे अतीव प्रसन्नता हुई । जहां तक मेरा अनुभव है कि श्री समर्पणानन्द जी का यह भाष्य अति सुन्दर एवं पूर्ण वैज्ञानिक है । इसके प्रथम कांड का प्रकाशन भी 'जन ज्ञान' से हुआ था जो मेरे पास सुरक्षित है । अतः मैं चाहता हूं कि शेष १३ कांडों का भी भाष्य मिल जाता तो अतीव सुन्दर होता । इस पुनीत कार्य के लिये आपको धन्यवाद ।

विद्युत अभियंता, अलीगढ़ (उ० प्र०) —वीरेन्द्र आर्य

प्रिय भारतेन्द्र जी,

'वैदिक समाज व्यवस्था' के विमोचन के शुभावसर पर कल दिल्ली में उपस्थित हेतु आपके निमंत्रण के लिए धन्यवाद । उत्तर में निवेदन है कि इन दिनों स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहने के कारण बाहर का प्रोग्राम बनाने में असमर्थ हूं । अतएव, इस आयोजन में अनुपस्थिति के लिए क्षमा चाहता हूं ।

आयोजन की पूर्ण सफलता के लिए परम पिता से प्रार्थना करता हूं ।

पटना —डा० दुखन राम

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार की
औषधियां प्रयोग करें

# गुरुकुल कासारि

**खाँसी की अपूर्व गुणकारी औषधि**

उपयोग किसी भी कारण से हुई खांसी, नजला, जुकाम आदि में लाभदायक है। सेवन विधि दिन में तीन बार छोटी चम्मच लेकर उंगली से चाटें।

# भीमसेनी सुरमा

## आंखों के अनेक रोगों के लिए

# चयवनप्राश

उत्तम स्वादिष्ट रसायन
शरीर को बलिष्ठ और कान्तिमय बनाता है।

**शारीरिक क्षीणता एवं फेफड़ों के लिए प्रसिद्ध
आयुर्वेद रसायन**

## पो० गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (सहारनपुर)

शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ
चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६। फोन नं० २६१४३८

महर्षि दयानन्द का सर्वथा नवीन खोजपूर्ण सामग्री से युक्त

## सरस्वतीन्द्र जीवन-चरित्र

जो पहली बार १८६७ में छपा था छप रहा है। आदेश भेजिए

# पत्र व मनीआर्डर आदि वेद मंदिर ही भेजें

सभी सदस्यों से प्रार्थना है कि वे सभी पत्र व मनीआर्डर आदि **वेद मन्दिर, दिल्ली-३६** के पते पर ही भेजें।

दिल्ली आने पर वेद मन्दिर में अवश्य पधारें। आजादपुर से वेद मन्दिर के लिए ८ बसें १३४ नं० प्रतिदिन जाती हैं। समय ६-२०, ७-४०, ९-००, ११-००, १४-५०, १६-१०, १५-३०, १९-३०।

बस आजादपुर—इब्राहीमपुर चलती है। इब्राहीमपुर से वेद मन्दिर १ फर्लांग है।

—प्रबन्धक

स्वामी समर्पणानन्द जी का

# शतपथ ब्राह्मण छपाएं

स्वामी समर्पणानन्द जी का अनमोल ग्रन्थ "शतपथ ब्राह्मण" छपना चाहिए। उनका यह महान् ग्रंथ सम्पादन कर रहे हैं देश के सुप्रसिद्ध विद्वान् अन्वेषक **प्रो० धर्मवीर,** अध्यक्ष संस्कृत विभाग, दयानन्द कालिज, अजमेर।

क्या आप केवल ५०००) का प्रबन्ध इस महान् ग्रंथ के लिए नहीं कर सकते? दानी का चित्र भी भाष्य में देंगे।

अध्यक्ष

**दयानन्द संस्थान**

# एक बार फिर

## वेद को घर घर में
## पहुंचाने का संकलप लीजिए

□

कम से कम ५ सैट मंगाएं

दो जिल्दों में : मूल्य १२५)
चार जिल्दों में : मूल्य १५१)

□

इन मूल्यों में यह महान् ग्रंथ
केवल दयानन्द संस्थान ही भेंट कर सकता है

□

भारी संख्या में मंगा कर
वेद प्रचार कीजिए

## दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर, दिल्ली-३६


मुद्रक-प्रकाशक पं० राकेश रानी द्वारा रायसीना प्रिंटरी, दिल्ली-६ में मुद्रित

जन-ज्ञान (मासिक)
१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग
करोल बाग, नई दिल्ली-५

जनवरी
१९७९

Regd No. D (C) 201
Regd. No. 107119/75

पं० भारतेन्द्र नाथ श्री केदारनाथ साहनी व श्री प्रशान्त वेदालंकार से विचार करते हुए।
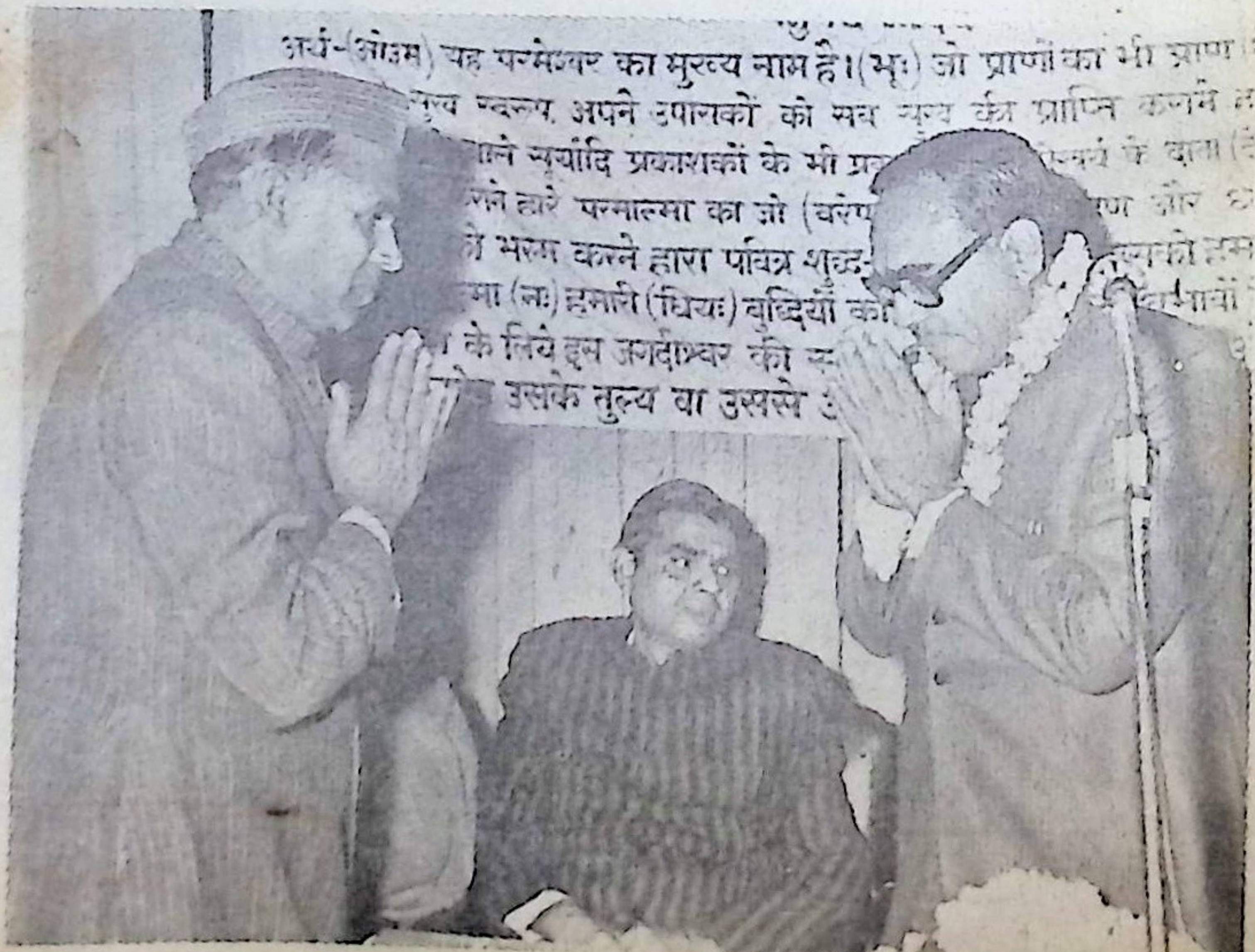
सहारनपुर के जन नेता श्री प्रह्लादसिंह आराधक श्री केदारनाथ साहनी का स्वागत करते हुए।